हर्षवर्द्धन-शीलादित्य

लेखक

भगवती प्रसाद पांथरी

प्रकाशक

जगत शङ्खधर बनारस

HSH
934·07
P 273 H

H. S. Srivastava Collection

हर्षवर्द्धन - शीलादित्य

H. S. Srivastava

HARI SHANKER SRIVASTAVA
M.A.; Ph.D., F.R.A.S (London)
Professor & Head of the Department of History
UNIVERSITY OF GORAKHPUR

प्रो० भगवतीप्रसाद पान्थरी, एम. ए.
प्राध्यापक
काशी विद्यापीठ, बनारस

प्रकाशक
जगत शङ्खधर — पो० बा० २२ — बनारस—१

प्रकाश-गृह, टिहरी के लिये
प्रकाशक
जगत शार्ङ्गधर

Library IIAS, Shimla
HSH 934.07 P 273 H
G4129

H
934.07
P273H

मूल्य—तीन रुपया आठ आना

Indian Institute of Advanced Study
ACC. NO. G-4129
DATE 5-12-01
SHIMLA

मुद्रक—
लालता प्रसाद
ज्योति प्रेस,
मध्यमेश्वर, बनारस

भारतीय संस्कृति के आचार्य

माननीय डाक्टर श्री सम्पूर्णानन्द को

सादर

प्रकाशकीय

हर्षवर्द्धन-शीलादित्य प्रो० पांथरी की नई कृति है। सातवीं शती के भारत की जानकारी के लिये हर्ष का अध्ययन बहुत आवश्यक है। हर्ष-वर्द्धन का प्राचीन भारत के महान् सम्राटों में प्रमुख स्थान है। उनका जीवन और चरित्र हमें केवल ऊँचे उठने की प्रेरणा ही नहीं देता बल्कि उनके समय के भारत की राजनैतिक, आर्थिक बौद्धिक और सांस्कृतिक प्रगति से भी परिचित कराता है।

प्रस्तुत पुस्तक बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थियों के उपयोग के लिये लिखी गयी है। हिन्दी में ऊँची कक्षाओं के योग्य विभिन्न विषयों के पुस्तकों की बहुत कमी है। "हर्षवर्द्धन" इसी दिशा में एक प्रयास है। यदि प्रस्तुत पुस्तक इतिहास के विद्यार्थियों को किसी तरह लाभ पहुँचाने में समर्थ हुई तो हम अपने प्रकाशन को सफल समझेंगे।

श्रावण ५. २०११
२१ जुलाई १९५३

जगत शङ्खधर

सहायक पुस्तकों की सूची

(1) An Imperial History of India – K. P. Jaiswal.
(2) Harsha Carita – Thomas and Cowell.
(3) Kadambari – Peter Peterson (IIIrd edition).
(4) Harsha R. K. Mukerji.
(5) Shri Harsha of Kanauj K. M. Panikkar.
(6) The Early History of India - V. A. Smith.
(7) History of North-Eastern India—R. G. Basak.
(8) History of Kanauj – R. S. Tirpathi.
(9) History of Medieval Hindu India, vol. I, C. V. Vaidya.
(10) Alberuni's India - E. C. Sachau.
(11) Records of Western Countries, vol. I & II, S. Beal.
(12) Yuan Chwang's Travels, vol. I & II., Watters.
(13) History of Orissa—R. D. Banerji.
(14) Life of Hiuen Tsiang S. Beal.
(15) Catalogue of Indian Coins Gupta Dynasties, Allen.
(16) Theism in Medieval India – Carpenter.
(17 हर्षवर्द्धन – श्री गौरीशंकर चटर्जी।
(18) भारतीय इतिहास की भूमिका— डा० राजबली पांडे।

(i) J. R. A. S. = Journal of Royal Asiatic Society.
(ii) J. A. S. B. = Journal of Asiatic Society Bengal.
(iii) J.B.O.R.S. = Journal of Bihar & Orissa Royal. Society.
(iv) E I. = Epigraphia Indica.
(v) Hc. C & T. = Harsha Carita—Cowell & Thomas

———

विषय-सूची

	पृष्ठ
अध्याय १	
पुष्यभूति-वंश का अभ्युदय	१ — २४
अध्याय २	
हर्ष का राज्यारोहण और साम्राज्य-प्रसार	२५ — ७३
अध्याय ३	
साम्राज्य का शासन	७४ — ९९
अध्याय ४	
हर्ष का विद्यानुराग	१०० — १२७
अध्याय ५	
हर्ष का धर्म-पराक्रम	१२८ — १४५
अध्याय ६	
धार्मिक-अवस्था	१४६ — १५८
अध्याय ७	
सातवीं शताब्दी का भारत	१५९ — १७२

अध्याय १

पुष्यभूति वंश का उदय

गुप्तों के बाद—अश्वमेध पराक्रमी सम्राट् समुद्रगुप्त और शकों के यशस्वी विजेता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का महान् गुप्तसाम्राज्य, उनके प्रवीर उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त (४५५ से ४६७) के बाद हूणों के आघात और प्रत्याघातों के फल से छठी शताब्दी के प्रारम्भ होते होते छिन्न-भिन्न हो चला। स्कन्दगुप्त के निर्बल उत्तराधिकारियों की शक्ति-हीनता का लाभ उठाकर तारेमाण और उसके बेटे मिहिरकुल के नेतृत्व में बर्बर हूण पश्चिमोत्तर से मध्यभारत तक फैल गये। हूणों का आधिपत्य यद्यपि स्थायी न हो सका लेकिन गुप्तसाम्राज्य की रीढ़ उन्होंने तोड़ कर रख दी। ह्वेनसांग के अनुसार गुप्तसम्राट् बालादित्य द्वितीय, जिसे अभिलेखों के भानुगुप्त से मिलाया जाता है, ने मिहिरकुल को मध्यभारत (ग्वालियर और मालवा) से हटा दिया था और उसके बाद हूणों की शक्ति केवल पश्चिमोत्तर-भारत में सीमित रह गयी थी। भानुगुप्त यद्यपि मध्यभारत से हूणों को हटाने में समर्थ हुआ लेकिन उनके आक्रमण के आघात से वह अथवा उसके उत्तराधिकारी गुप्तसाम्राज्य को टूटने से रोक न सके। लगभग ५३० और ५३६ ई० के लगभग मालवा में यशोधर्मन नाम का एक यशस्वी 'जनेन्द्र' (नायक) भारत के राजनैतिक आकाश में उदित हुआ जिसकी चमक ने गुप्तों के सूर्य को भी मंद कर दिया। सम्राट् यशोधर्मन के मन्दसोर (दशपुर) प्रस्तर-स्तम्भ-लेख के अनुसार (५३२-५३३ ई०) उसने उन प्रदेशों पर भी

विजय स्थापित की जिन पर गुप्तों का भी आधिपत्य नहीं था और जहाँ हूण भी प्रवेश नहीं कर सके थे। लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) से महेन्द्रपर्वत तक और हिमालय से पश्चिमी-समुद्र-तट तक के समस्त प्रदेश पर उसने प्रभुत्व स्थापित किया। हूण राजा मिहिरकुल जिसने शिव के सिवाय किसी को मस्तक नहीं नवाया था उसे भी उस (यशोधर्मन) के सामने सिर नवाना पड़ा *। मन्दसोर लेख के इस विवरण से स्पष्ट है कि जिस जनेन्द्र यशोधर्मन ने मिहिरकुल को परास्त कर हूणों की रही-सही शक्ति को नष्ट किया उसी के अभ्युदय के फल से गुप्तों की टूटती हुई राजनैतिक

---

* मन्दसोर में प्राप्त तीन प्रस्तर-स्तम्भ-लेखों में से दो (नं० ३३-३४ Fleet—C. I. I, vol. III) में यशोधर्मन नाम के सम्राट् की विजयों का उल्लेख है; और एक (नं० ३५) में पहले यशोधर्मन (जनेन्द्र) और फिर विष्णुवर्धन (नराधिपतिः, राजाधिराज परमेश्वर) नाम से दिग्विजय का वर्णन किया गया है। श्री एलन ने इन दो नामों को दो भिन्न व्यक्तियों का नाम समझा है, और अनुमान किया है कि यशोधर्मन, विष्णुवर्धन का अधिपति था (Allen, Gupta coins, Introduction, pp. 1v-1x)।

श्री राधागोविन्द बसाक ने भी नं० ३५ में आये यशोधर्मन और विष्णुवर्धन को दो भिन्न व्यक्ति माना है और अनुमान किया है कि विष्णुवर्धन यशोधर्मन का अधिपति था (History of North-Eastern India p. 98, by R. G. Basak)।

श्री काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार नं० ३५ के यशोधर्मन और विष्णुवर्धन दो भिन्न व्यक्ति नहीं हैं। सम्भवतया विष्णुवर्धन, यशोधर्मन का विरुद था, इसलिये यशोधर्मन-विष्णुवर्धन एक ही व्यक्ति (यशोधर्मन) का पूरा नाम है (Imperial History of India by K. P. Jaiswal, pp. 40-41)।

शक्ति भी छिन्न-भिन्न हो चली और परिणामतः उत्तर तथा दक्षिण भारतमें अनेक नये राज्य पैदा हो चले।

अनुमानतः यशोधर्मन लगभग ५४० ई० सन् तक जीवित रहा[1] और उसके बाद उत्तरीभारत की राजनैतिकसत्ता मुख्यतः मौखरियों के हाथ में चली आयी। मौखरी राजा प्रारम्भ में संभवतया गुप्तों के अधीनस्थ सामन्त थे, और बाद में कुछ समय यशोधर्मन के भी सामन्त रहे। लेकिन मालूम होता है कि यशोधर्मन के बाद छठी शती के मध्य में मौखरी राजा उत्तर-भारत में स्वतंत्र रूप से प्रबल हो उठे। मौखरियों का अभ्युदय ईशानवर्मन (लगभग ५३० से ५५४ ई० तक) से प्रारम्भ हुआ। मौखरी वंश में वही पहला राजा हुआ जिसने प्रथमतः महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की और आर्यावर्त्त का सम्राट होने का सुयश प्राप्त किया। इस समय से लेकर लगभग ६०० ई० सन् तक आर्यावर्त्त में मौखरी राजवंश का प्राधान्य रहा, और पाटलिपुत्र की जगह अब कन्नौज राजनैतिक-सत्ता तथा प्रभुता का केन्द्र बन गया। अंतिम मौखरी राजा ग्रहवर्मन (६००—६०५ ई० सन् तक) हुआ। इसका विवाह कन्नौज के पड़ोसी राजवंश के महाराज प्रभाकरवर्धन की बेटी राज्यश्री से हुआ। ग्रहवर्मन जल्दी ही मालवा के राजा द्वारा युद्ध में मार डाला गया। उसकी मृत्यु के साथ मौखरी प्रभुता भी समाप्त हो चली और आर्यावर्त्त पर तब उनकी जगह हर्षवर्धन के नेतृत्व में थानेश्वर के पुष्यभूति वंश की प्रभुता स्थापित हुई। पुष्यभूति सम्राट् हर्षवर्धन, प्राचीनकाल के उन महान् राजाओं में अंतिम स्थान रखता है जिसने राष्ट्रीय-एकीकरण के लिये अपनी दिग्विजय द्वारा समूचे भारत में एकछत्र-राज्य और शासन स्थापित करने का सराहनीय

१—An Imperial History of India by K. P. Jaiswal p. 57.

प्रयत्न किया। यशस्वी गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की तरह यद्यपि वह विंध्याचल को लाँघ कर दक्षिण पर तो प्रभुत्व न कायम कर सका, लेकिन उत्तरी-भारत के एक बहुत बड़े भाग पर उसका एकाधिपत्य रहा जिस कारण अभिलेखों में उसे 'सकलोत्तरापथ-नाथ' कहा गया है।

पुष्यभूति वंश

इस वंश का संस्थापक महाकवि बाण के हर्षचरितानुसार पुष्यभूति नाम का एक राजपुरुष था जिसने श्रीकंठ (पूर्वी पंजाब) में राज्य स्थापित किया। वह शिव का अनन्य उपासक था और उसी के नाम पर यह वंश पुष्यभूति-वंश के नाम से प्रख्यात हुआ।[१] इससे प्रकट है कि पुष्यभूति किसी 'जाति' की संज्ञा न होकर एक राजवंश अथवा राजकुल का नाममात्र है। प्राचीन इतिहास में ऐसे कई एक उदाहरण देखने में आते हैं जहाँ संस्थापकों के नाम पर उनके राजवंशों की संज्ञा रखी गयी है। महान् गुप्तवंश उसके संस्थापक गुप्त अथवा श्रीगुप्त के नाम पर ही गुप्त नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है।

बौद्धग्रन्थ मंजुश्री मूलकल्प के अनुसार श्रीकंठ के पुष्यभूति-वंश के राजा वैश्य जाति के थे। उनका आदि पूर्वज विष्णु[२] नाम का एक राजा था। प्रारम्भ में इस वंश के आदि-पुरुष केवल मंत्री रहे और बाद में राजा बने। इस वंश का पहला राजा आदित्य अथवा आदित्य-

---

१—हर्षचरित (थॉमस और कॉवेल) पृष्ठ ८९ और १२८-१२९

२—श्री जायसवाल के अनुसार इस नाम से तात्पर्य मन्दसोर अभिलेख के यशोधर्मन-विष्णुवर्धन से है (Imperial History of India, pp. 28-29)।

वर्धन हुआ जो स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) का निवासी था ।[१] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि हर्षवर्धन का वर्ण वैश्य (फी-से) था ।[२]

मंजुश्री मूलकल्प के अनुसार पुष्यभूति वंश की तालिका इस प्रकार है—

आदित्यवर्धन
|
प्रभाकरवर्धन
|
राज्यवर्धन — हर्षवर्धन

बाण ने पुष्यभूति के बाद के राजाओं में केवल प्रभाकरवर्धन का उल्लेख किया है ।

सम्राट् हर्षवर्धन के मधुबन अभिलेख (संवत् २५ या ६३१ ई० सन्) में उनके पूर्वजों की नामावली इस प्रकार दी गयी है—

१—जायसवाल के अनुसार संभवतया वे पहले मौखरियों के मंत्री रहे (वही; पृष्ठ-२८) ।

२—यह अनुमान किया जा सकता है कि राजपद प्राप्त कर लेने से इस वंश ने क्षत्रिय-पद भी पा लिया था जिस कारण क्षत्रिय राजवंशों से उनका संबंध स्थापित हुआ । बाण के हर्षचरित से प्रतीत होता है कि पुष्यभूति राजा 'सूर्यकुल' से संबंधित थे और मौखरी सोम-वंशी थे । पुष्पभूति राजाओं का प्रमुखतः 'आदित्य-भक्त' होना भी उनका सूर्यकुल से संबंध प्रकट करता है । श्रीपेटर पिटर्सन के मत में हर्ष 'क्षत्रिय' कुल का था । (The Bana's Kadambari, Third edi., 1900, by Peter Peterson, pp. II., p. 62, fn. I.)

नरवर्धन-पत्नी—वज्रिणी देवी
|
राज्यवर्धन प्रथम—पत्नी—अप्सरो देवी
|
आदित्यवर्धन—पत्नी—महासेनगुप्ता देवी
| (पश्चात् गुप्त महाराज महासेनगुप्त की बहिन)
|
प्रभाकरवर्धन-पत्नी—यशोमति देवी*

प्रभाकरवर्धन से पूर्व के राजाओं को केवल 'महाराज' कहा गया है जिससे मालूम होता है कि वे श्रीकंठ के साधारण सामन्त राजा थे। लेकिन प्रभाकरवर्धन के समय में पुष्यभूति-वंश का सूर्य चमक उठा और इस वंश ने अपनी स्वतंत्र-सत्ता स्थापित कर दी। बाण के कथनानुसार प्रभाकरवर्धन ने अपने बल-शौर्य से राज्य का विस्तार बढ़ाया और दिग्विजय के बाद महाराजाधिराज (परमभट्टारक) और प्रतापशील की उपाधियां ग्रहण कीं। प्रतापशील नाम से प्रभाकरवर्धन की ख्याति सर्वत्र फैल गयी थी (प्रतापशील इति प्रथित्वरनाम प्रभाकरवर्धनो नाम राजाधिराजः)। उसका प्रतापशील नाम सिक्कों में भी मिलता है।[1]

हर्षचरित में प्रभाकरवर्धन की प्रचंड शक्ति और दिग्विजय का इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

"हूणहरिण केसरी सिन्धुराजज्वरो गुर्जरप्रजागरो गन्धाराधिपगन्धद्विपपाकलो लाटपाटवपाटच्चरो मालवलक्ष्मीलतापरशुः" '(प्रभाकरवर्धन) हूणरूपी हिरणों के लिये सिंह, सिन्धु-राज के लिये ज्वर, गुर्जरप्रदेश वालों की नींद भंग करनेवाला, गान्धार-राज रूपी मदगन्धी हाथी के लिये घातक महामारी, लाटों की चंचलता अथवा पटुता को हरनेवाला

---

* श्री राधाकुमुद मुकर्जी ने यशोमति को पश्चिमी मालवा के यशोधर्मन विक्रमादित्य की बहिन बतलाया है (Harsha, p. 10)।

१—J A S B—pp. 843-846.

और मालवदेश रूपी लता की श्री को नष्ट करनेवाला परशु था।' अभिलेखों में भी उसकी विजयों का उल्लेख करते हुये कहा गया है कि 'उस (प्रभाकरवर्धन) की कीर्ति चारों समुद्रों को लाँघ गयी थी और बहुत से राजाओं ने उसके आतंक तथा स्नेह से दबकर उसे आत्मसमर्पण कर दिया था।' हर्ष के मधुबन अभिलेख में पुष्यभूति वंश के पूर्ववर्ती राजाओं में केवल प्रभाकरवर्धन को 'महाराजाधिराज परमभट्टारक' की उपाधि प्रयुक्त की गयी है। निःसंदेह यह उपाधि उसके बढ़ते हुये प्रभाव और पराक्रम की सूचक है, लेकिन हर्षचरित के अस्पष्ट विवरण से यह अनुमान करना कठिन है कि—सिन्ध, गान्धार, गुर्जर-प्रदेश* (अथवा गुजरात ?), लाट तथा मालव प्रदेश पर प्रभाकरवर्धन ने प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। संभवतया पंजाब के अधिकांश भाग पर उसने प्रभुत्व स्थापित करके अपने अड़ोसी-पड़ोसी राज्यों को आतंकित कर दिया था।[1] हर्षचरित के अनुसार प्रभाकरवर्धन ने अपने बेटों के बाल-सहचरों के रूप में मालवराज के दो बेटों कुमार-गुप्त और माधवगुप्त को नियुक्त किया था। कुमारगुप्त राज्यवर्धन का बालसखा था और माधवगुप्त हर्ष का। इस उद्धरण से यह अनुमान किया जा सकता है कि मगध और मालवा (पूर्वी) का पिछला गुप्त-

---

* वि० स्मिथ का अनुमान है कि गुर्जर से अभिप्राय शायद राजपूताना के गुर्जरों से हो सकता है, लेकिन अधिक सम्भव यह है कि ये गुर्जर पंजाब के ही गुर्जर थे जिनके नाम पर वहाँ के दो जिले आज भी गुजरात और गुजरानवाला कहलाते हैं (The Early History of India 3rd edition, p. 336)।

१—श्री ए० कनिंघम के अनुसार प्रभाकरवर्धन के राज्य में दक्षिणी पंजाब और पूर्वी राजपूताना के कुछ भाग शामिल थे। ह्वेनसांग ने थानेश्वर राज्य का घेरा ७०० ली अथवा १२०० मील बतलाया है।

सम्राट् महासेनगुप्त प्रभाकरवर्धन के दबदबे अथवा प्रभाव में था, और इसीलिये उसके दो बेटे पुष्यभूति सम्राट् ने अपने लड़कों के बाल-सखाओं के रूप में रखे थे। किन्तु कलचुरियों के अभिलेखों के अध्ययन से मालूम होता है कि लगभग ५६० और ५६५ ई० सन् के लगभग मालवा कलचुरियों के अधिकार में चला आया था। संभवत या लगभग ५६५ के आसपास कलचुरि राजा शंकरगण (कृष्णराज का बेटा) ने पिछले-गुप्त-सम्राट् महासेनगुप्त को हराकर मालवा उससे छीन लिया था। डा० डी० सी० गांगुली के अनुसार इस युद्ध में महासेनगुप्त काम आया जिससे उसके दोनों बेटे निराश्रय हो चले, और इसलिये उन्हें अपनी बुआ के लड़के प्रभाकरवर्धन के यहाँ शरण लेनी पड़ी। यहाँ पर यह स्मरण रहे कि प्रभाकरवर्धन की माता महासेनगुप्ता पिछले-गुप्त सम्राट महासेनगुप्त की बहिन थीं। शायद अपने मामा महासेनगुप्त का पक्ष लेकर प्रभाकरवर्धन ने कलचुरी शंकरगण पर चढ़ाई कर उसे मालवा से खदेड़ने का उपक्रम भी किया हो, लेकिन इसमें उसे सफलता नहीं मिल सकी—और मालवा पर कुछ समय तक कलचुरियों का (लगभग ६२८-६२६ ई० तक) अधिकार बना रहा।* अतः 'मालवलक्ष्मीलता परशु' से मालवा के जिस राजकुल से सम्राट् प्रभाकरवर्धन की शत्रुता प्रतिलक्षित होती है वह कलचुरी-कुल समझा जाना चाहिये।

प्रभाकरवर्धन के दो बेटे—राज्यवर्धन (जन्म अनुमानतः ५८६ ई० सन्) और हर्षवर्धन (जन्म अनु० ५६० ई० सन्) और एक बेटी—राज्यश्री (जन्म अनु० ५६३ ई० सन्) थी।[१]

राज्यवर्धन हर्ष से लगभग चार वर्ष और राज्यश्री से छः वर्ष बड़ा था। हर्षचरित के विवरणानुसार राज्यश्री का जन्म होने पर, प्रभाकर-

---

* JBORS—1933, p. 407.

१—Harsa by R. K. Mukerji, p. 69.

वर्धन की महरानी यशोमती के भाई (इसका नाम नहीं दिया गया है) ने अपने बेटे भण्डि को राजपुत्रों (राज्य और हर्ष) के साथी के रूप में उपस्थित किया। भण्डि भी तब आठ वर्ष का बालक था याने राज्य-वर्धन से वह लगभग दो वर्ष बड़ा था। भण्डि के बालसाथी नियुक्त होने के कुछ समय बाद पिछले-गुप्त सम्राट् महासेन गुप्त के बेटे भी बालसखा नियुक्त किये गये थे।

प्रभाकरवर्धन ने राज्यश्री का विवाह कन्नौज (कान्यकुब्ज) के मौखरी महाराजा ग्रहवर्मन से किया। राजनैतिक दृष्टि से यह विवाह बहुत महत्त्वपूर्ण था; क्योंकि थानेश्वर और कन्नौज के दोनों प्रतापी राजवंश मिलकर अब अपने सामान्य शत्रुओं—हूणों और मालवा के कलचुरियों का दृढ़ता और सफलता के साथ सामना कर सकते थे। यह विवाह संबंध प्रभाकरवर्धन के बढ़ते हुये राजनैतिक प्रभाव को भी प्रकट करता है। हर्षचरित से लक्षित होता है कि इस विवाह-संबंध से पूर्व ग्रहवर्मन के पिता अवन्तिवर्मन मौखरी की शायद मृत्यु हो चुकी थी, जिस कारण उसे (ग्रहवर्मन्) यह विवाह कार्य स्वयं ही संपन्न करना पड़ा।[1]

१—इस विवाह-संबंध पर सम्मति देते हुए श्री आर. जी. बसाक (Shree R. G. Basak, History of North-Eastern India, p. 142) लिखते हैं—"Owing to Prabhakara's great political power, the Maukharis remained somewhat in submission to him, for we find him giving his daughter Rajyasri, in marriage with Avantivarman's son, king Grahavarman, then ruling in Kusasthala or Kanyakubja (Kanauj)".

श्री आर. एस. त्रिपाठी (Shree R. S. Tripathi, History

मालूम होता है प्रभाकरवर्धन के शासन के अंतिमकाल में हूण पुनः प्रबल हो उठे थे और उन्होंने अपने उपद्रवों से उत्तर-पश्चिमी सीमांत को फिर से आक्रांत कर दिया था। अतः बाण लिखता है कि बर्बर हूणों को दबाने के लिये प्रभाकरवर्धन को अपने बेटे राज्य-वर्धन (द्वितीय) को उत्तरापथ भेजना पड़ा।[१] राज्यवर्धन तब १८ वर्ष का हो चुका था जो आयु बाण के अनुसार राजकुमार के 'कवचधारण' के लिये समुपयुक्त थी। संभवतया वृद्ध और अस्वस्थ होने के कारण 'हूण-हरिण-केसरी' स्वयं उत्तरी पहाड़ों में घुसने में समर्थ न रह गया था, इसीलिये उसे अपने पुराने विश्वस्त मंत्री और सामन्तों सहित युवराज राज्य को सैन्यदल के साथ उत्तरापथ[२] के लिये रवाना करना पड़ा।

---

of Kanauj, p. 51) लिखते हैं—

"From the political point of view it was a very Important alliance. It linked up the two powerful houses of the Maukharis of Kanauj and Vardhana's of Thanesvara, and was largely instrumental in shaping the course of history during that momentous period".

१—हर्षचरित-अनुवाद Cowell and Thomas, p. 132.

२—'उत्तरापथ'—बाण के इस कथन से कि राज्यवर्धन उत्तरापथ को भेजा गया, यह सिद्ध होता है कि उत्तरापथ-प्रदेश थानेश्वर से आगे था। काव्यमीमांसा के लेखक राजशेखर (नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में) ने लिखा है कि पृथुदक से आगे का प्रदेश उत्तरापथ है। अतः पृथुदक् अथवा पहोआ (कारनूल जिला—पंजाब) आर्यावर्त्त की अन्तिम सीमा थी और उसके आगे का प्रदेश उत्तरापथ कहलाता था। बृहत्संहिता के अनुसार उत्तरापथ में गांधार, तक्षशिला और पुष्कलावती (वर्तमान

अभियान की कुछ मंजिलों तक राज्य का छोटा भाई हर्ष, जो लगभग १४ वर्ष का बाल-युवक था, भी साथ रहा; लेकिन जब राज्यवर्धन सेना लेकर उत्तरापथ के कैलाश-पर्वतमाला में घुसा, तो हर्ष पीछे ही रह गया और आखेट में लग गया। इसी बीच शीघ्र ही थानेश्वर से एक राजदूत ने आकर हर्षवर्धन को महाराज प्रभाकरवर्धन के बहुत बीमार होने का समाचार दिया। इस समाचार को पाकर हर्ष तेजी से राजधानी लौट आया। महल में पहुँचने पर पिता के भवन के द्वार पर उसे राजवैद्य शुषेण मिला जिसका बदन दुःख से खिन्न हो रहा था। हर्ष ने राजवैद्य से पूछा कि क्या उसके पिता की हालत में कोई अन्तर आया है, और उत्तर मिला कि हालत वैसी ही चिन्ता-जनक बनी हुई है, लेकिन उसके पहुँच जाने से शायद अब कोई अन्तर आ सके। दुःखी राजकुमार ने तब धीरे-धीरे पिता के भवन में प्रवेश किया, जहाँ उसकी माता पति के दुःख से बेचैन होकर रो रही थी। महाराज के बचने की कोई आशा न देखकर हर्ष ने तुरन्त ही अपने बड़े भाई को बुलालाने के लिये दूत को रवाना कर दिया। इसके कुछ ही दिन बाद (राज्यवर्धन के पहुँचने से पूर्व ही) प्रभाकरवर्धन ने हमेशा के लिये आँखें मूँद लीं। महारानी यशोमति भी अपने पति के साथ ही सती होकर स्वर्ग सिधारीं। हर्षवर्धन ने अपने पिता-माता का अन्तिम संस्कार किया और व्यग्रता के साथ अपने बड़े भाई की प्रतीक्षा करने लगा। हर्षचरित से यह भी प्रतीत होता है कि राज्यवर्धन की जगह प्रभाकरवर्धन शायद हर्षवर्धन को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता

पेशावर) शामिल थे। मालूम होता है कि हूण इस समय भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त के इन्हीं हिस्सों को आक्रान्त किये हुये थे और शायद राज्यवर्धन तक्षशिला और पुष्कलावती (पेशावर) की ओर भेजा गया था।

था; किन्तु उच्चादर्शी हर्ष भरत की तरह अपने पूज्य बड़े भाई के अधिकारों को हरने के लिये प्रस्तुत नहीं हो सका।[1]

हूणों को दबाकर कुछ दिन बाद राज्यवर्धन भी थानेश्वर लौट आया। पिता-माता की मृत्यु से युवराज का हृदय संसार से विरक्त-सा हो चला था इसलिए उसने सिंहासन तथा राज्य से वितृष्णा प्रकट कर तापस का जीवन बिताने की इच्छा प्रकट की। राज्य ने अपने छोटे भाई हर्ष को राजा की जिम्मेदारी लेने को कहा; किन्तु वह तैयार न हुआ और अन्त में बहुत समझाने-बुझाने पर राज्य ने सिंहासन ग्रहण करना स्वीकार कर लिया।[2] इसी बीच, जब राज-भवन में अभी दोनों

१—देखिये—Harsha Carita by Cowell and Thomas, p. 156, and pp. 158-159—मृत-शय्या पर पड़े प्रभाकरवर्धन ने हर्ष को सम्बोधित कर कहा था—"Succeed to this world; appropriate my treasury; make prize of the feudatory kings; support the burden of royalty; protect the people; guard well your dependants". इस पर हर्ष ने राज्य-ग्रहण करने के बजाय इस प्रकार विचार किया—"Let sovereign glory flee to a hermitage"; and "let valour mortify herself in forest seclusion, let heroism put on rags". See also—'History of Kanauj' by R. S, Tripathi; pp. 69-70.

२—Harsha Carita; C. T. pp. 172-173. श्री वि. स्मिथ ने कल्पना की है कि प्रभाकरवर्धन के मरने पर थानेश्वर-दर्बार में हर्ष को सिंहासन पर बिठाने का षड्यन्त्र हो रहा था। लेकिन ठीक समय से राज्यवर्धन के राजधानी लौट आने से यह योजना सफल न हो सकी—यह धारणा 'हर्षचरित' के विवरण के प्रतिकूल है और भरत-जैसे भाई हर्ष

भाइयों में परस्पर वार्तालाप चल ही रहा था कि अचानक एक आदमी रोता-विलपता भवन में घुसा और उनके चरणों में जा गिरा। यह व्यक्ति मौखरी महारानी राज्यश्री का परिचारक संवादक था। वह एक दुःख-भरी कहानी लेकर पहुँचा था। संवादक ने बड़े परिताप के साथ कहना शुरू किया, 'जिस दिन महाराज प्रभाकरवर्धन के निधन का समाचार मालव-राज को मिला, उसी दिन उस दुष्ट ने महाराज ग्रहवर्मन की हत्या कर डाली और महारानी राज्यश्री को एक लुटेरे की स्त्री की तरह पैरों में बेड़ी पहिनाकर कान्यकुब्ज के कारागार में डाल दिया। यह भी खबर है कि वह दुष्ट सेना को नेता-विहीन समझकर, इस प्रदेश (थानेश्वर) पर भी आक्रमण कर अधिकार स्थापित करना चाहता है।'[1]

पर कपोलकल्पित आरोप है—वि. स्मिथ लिखता है–"There are indications that a party at court was inclined to favour the succession of the younger prince; but all intrigues were frustrated by the return of Rajyavardhana who ascended the throne in due course". [The Early History of India, Third edition, p. 336.]

यदि राज्यवर्धन को हर्ष के कारण कोई दुश्चिन्ता होती तो वह पिता की बीमारी की खबर पाते ही युद्ध-क्षेत्र से तुरन्त लौट आता। इस संबंध में श्री पन्निकर की सम्मति उद्धृत कर देना काफी होगा—"Rajya-Vardhana did not abandon the field of war in order to hasten to the capital where he knew the administration will be conducted in his name by Harsha". (Shri Harsha of Kanauj, by K. M. Panikkar p. 12.)

१—Harsha-Carita, C & T., pp. 165-173.

इस परितापपूर्ण समाचार को सुनकर राज्यवर्धन का खून खौल उठा। मालवराज की इस चेष्टा को राज्यवर्धन ने 'चींटी के पंख लगना समझा'। क्रोध से उबलते हुए राज्यवर्धन ने कहा कि 'पुष्य-भूतियों के प्रति मालवराज का यह दुर्व्यवहार वैसा ही है जैसा कि एक कुत्ते का सिंह की पूँछ खींचना अथवा एक मेंढक का नाग पर प्रहार करना·······।' अत्यन्त आवेग के साथ राज्य ने मालवराज को उसके कुकर्मों का स्वाद चखाने के लिये अपने सेनापति और बाल साथी भण्डि के साथ दस हज़ार घुड़सवार सेना लेकर शीघ्र ही कन्नौज की ओर कूच करने का निश्चय किया।* अभियान से पूर्व राज्यवर्धन ने हर्ष को आदेश दिया कि सब सामन्तों और बाकी सेना के साथ वह राजधानी में ही रहे। हर्ष, जो संवादक की दुःखभरी कहानी सुनकर अपने बड़े भाई की तरह ही मालवराज पर कुपित हो रहा था, राजधानी में रुके रहने के आदेश से बहुत दुःखी हुआ। व्यथित राजकुमार ने साथ ले जाये जाने के लिये बहुत आग्रह किया और स्वीकृति प्राप्त करने के लिये नतमस्तक होकर भाई के चरणों पर गिर पड़ा। दुःख से कातर हुये अपने छोटे भाई को राज्यवर्धन ने हाथ पकड़कर ऊपर उठाया और सस्नेह उसे समझाया कि दो सिंहों का मिलकर एक हिरन का पीछा करना शोभनीय नहीं है, इसलिये उसे रुके रहने में क्लेश नहीं मानना चाहिये। इस तरह हर्ष को समझा-बुझाकर राज्यवर्धन बिना समय खोये मालवराज को ग्रसने के लिये द्रुतवेग से थानेश्वर से कन्नौज की ओर बढ़ चला।

हर्षचरित में मालवराज का नाम नहीं दिया गया है। यह मालवराज कौन था—उसका नाम और वंश क्या था—इस प्रश्न को सुलझाना विद्वानों के लिये एक कठिन समस्या बनी हुई है। श्री राधाकुमुद मुकर्जी का अनुमान है कि यह मालवराज शायद पश्चिम मालवा के राजा

---

* Ibid—pp. 173-175.

यशोधर्मन विक्रमादित्य का लड़का शीलादित्य था, और उसने हर्ष के मधुबन-लेख में उल्लिखित पूर्वीमालवा के राजा देवगुप्त से मिलकर कन्नौज पर आक्रमण किया था।* अन्य बहुत से विद्वान् कन्नौज के आक्रमणकारी और ग्रहवर्मन के हत्यारे मालवराज को अनुमानतः हर्ष के मधुबन लेखवाला देवगुप्त मानते हैं। जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं ५६५ ई० सन् के लगभग कलचुरी राजा शंकरगण ने मालवा पर अधिकार कर लिया था। शंकरगण के बाद उसका बेटा बुद्धराज कलचुरी सिंहासन पर बैठा। चालुक्य महाराज मंगलेश के महाकूट स्तम्भ-लेख[1] जो ६०२ ई० सन् का माना जाता है, से मालूम होता है कि उसने 'बुद्ध' नाम के एक राजा को युद्ध में परास्त किया था। यह 'बुद्ध' कलचुरी राजा बुद्धराज माना जाता है। अतः प्रकट है कि बुद्धराज लगभग ६०२ ई० सन् तक अपने पिता के सिंहासन पर बैठ चुका था। इस बुद्धराज के विदिसा अभिलेख, जो कलचुरी संवत् ३६० अथवा ई० सन् ६०१-८ में पड़ता है, से पता चलता है कि अपने पिता शंकरगण की तरह मालव-प्रदेश पर उसका भी अधिकार था। बुद्धराज के अन्य अभिलेखों से भी यह मालूम होता है कि मालवा के अलावा लाट और गुजरात पर भी कुछ समय तक उसका अधिकार रहा[2] और अन्त में लगभग ६२८-२९ में सौराष्ट्र अथवा वल्लभी के मैत्रिक राजाओं ने कलचुरियों को वहाँ से निकाल बाहर किया (JBORS. 1933. p.407)। इन प्रमाणों के आधार पर हमें यह अनुमान करने में कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होती कि जिस मालवराज ने ग्रहवर्मन की हत्या की थी वह शायद कलचुरी बुद्धराज ही रहा होगा। मधुबन और बाँसखेड़ा के अभिलेखोंवाला देवगुप्त शायद

---

* Harsha, p. 16.

१—Indian Antiquary vol. XIX, p. 16.

२—Sarasvani Plates, E. I. vo,vi, pp. 294-300.

पिछले-गुप्त राजवंश से सम्बन्धित था। संभवतया वह बुद्धराज से मिल गया था और महासेनगुप्त का पराभव होने पर मगध का अधिपति बन गया था। शायद बुद्धराज के कन्नौज-आक्रमण में उसका प्रमुख हाथ और सहयोग रहा जिस कारण उसका हर्ष के लेखों में प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है।* यह भी अनुमान किया जा सकता है कि देवगुप्त के पराभव के साथ पिछले-गुप्तों का मगध का राज्य भी समाप्त हो गया, लेकिन हर्ष की मृत्यु के बाद उसके मित्र माधवगुप्त और उसके बेटे आदित्यसेन द्वारा पिछला-गुप्तवंश मगध में पुनः दूसरी बार प्रतिस्थापित कर दिया गया'।

---

* बुद्धराज के अभिलेखों के आधार पर श्री हेमचन्द्र राय चौधरी यह स्वीकार करते हैं कि लगभग ६०८ ई० में मालवा पर कलचुरियों का अधिकार हो गया था। यदि वे शंकरगण के अभिलेखों को ध्यान में रखते तो डा० गांगुली के इस कथन को भी वे अमान्य न स्वीकार करते कि लगभग ५९५ ई० के ही मालवा पिछले-गुप्तों के हाथ से निकल-कर कलचुरियों के हाथ में चला गया था। ऐसी स्थिति में वे भी इस बात को विश्वसनीय समझ सकते थे कि शायद बुद्धराज ही ग्रहवर्मन का हत्यारा और हर्षचरित का मालवराज था (श्री रायचौधरी के मत के लिये देखिये—Political History of India, p. 514, fn. 1, और p. 515)।

देवगुप्त के संबंध में श्री रायचौधरी लिखते हैं—

"He may have been the eldest son of Mahasena gupta, and an elder brother of Kumargupta and Madhavagupta" (Political History of Ancient India p. 514).

श्री हॉरनोल देवगुप्त के संबंध में लिखते हैं—

"Devagupta may have represented a collateral

हर्षचरित के विवरण से लक्षित है कि कन्नौज पर अधिकार करने के बाद मालवराज थानेश्वर की ओर बढ़ा जा रहा था।[१] इसमें संदेह नहीं कि थानेश्वर को दबाये बिना मालवराज कन्नौज पर अधिकार नहीं रख सकता था। कन्नौज का महाराज ग्रहवर्मन थानेश्वर की राजकन्या का पति था। अतः थानेश्वर और कन्नौज परस्पर प्रकृत-मित्र व संबंधी थे और इसलिये कन्नौज का शत्रु स्वभावतः थानेश्वर का भी शत्रु था। मालवराज का थानेश्वर की ओर बढ़ने से यह भी प्रकट है कि राज्यवर्धन और मालवराज में मुठभेड़ कन्नौज और थानेश्वर के बीच कहीं हुई होगी। इस मुठभेड़ में राज्यवर्धन ने बहुत ही सरलता से मालवराज के मद को चूर्ण कर उसकी सेना और शक्ति को रौंद डाला। मालवराज किसी तरह अपने प्राणों को लेकर भाग खड़ा हुआ और

---

line of the Malava family who continued to pursue a policy hostile to the Pushyabhutis and the Maukharis, while Kumara, Madhava, the Gupta Kulputra who connived at the escape of Rajyasri from Kusasthala (Kanauj), and Adityasena, son of Madhava, who gave his daughter in marriage to a Maukhari may have belonged to a friendly branch"—(JRAS, 1903, p. 562)

श्री राधाकुमुद मुकर्जी भी कहते हैं--

"Devagupta must have been the elder brother of Madhavagupta (as well as Kumargupta), and succeeded to the throne of Malwa after his father Mahasenagupta" (Harsha, p. 54).

१—Hc.; C & T. pp. 165-173.

उसका सारा सामान और शिविर लूट लिया गया तथा सेना कैद कर ली गयी। किन्तु दुर्भाग्य से राज्यवर्धन के नक्षत्र उसके अनुकूल न थे, अतः इस विजय का हर्ष शीघ्र ही विषाद में परिणित हो चला।

इधर कुमार हर्षवर्धन राजधानी में उत्सुकता के साथ अपने भाई की विजययात्रा के समाचारों की प्रतीक्षा करता जाता था। अंत में, काफी समय बीतने पर, एक दिन राज्यवर्धन की अश्वसेना के प्रधान (वृहदश्वावार) कुन्तल ने आकर राजकुमार को यह दुःखपूर्ण समाचार सुनाया—'यद्यपि राज्यनर्धन ने बहुत सरलता से मालवराज की सेना को रौंद डाला था, लेकिन वह स्वयं गौड़ाधिपति (शशांक) द्वारा धोखे से मार डाला गया।[1] इस समाचार को सुनाने के साथ ही वीर अश्वसेनापति ने हर्ष को शोक और दुःख में समय गँवाने के बजाय तुरंत ही अपने भाई के हत्यारे से बदला लेने की सलाह दी।

हर्षचरित के विवरण से मालूम होता है कि मालवराज को थानेश्वर और कन्नौज के बीच कहीं युद्ध में पछाड़ने के बाद, राज्यवर्धन कन्नौज पर अधिकार करने तथा अपनी प्रिय बहिन को कारागार से मुक्त कराने के लिये मौखरी राजधानी की ओर बढ़ा जा रहा था; लेकिन वहाँ पहुँचने से पूर्व ही वह मार्ग में गौड़ाधिपति शशांक द्वारा धोखे से मार डाला गया। मालवराज के शिविर से प्राप्त असंख्य लूट और बंदी किये गये

१—Hc., C & T., pp. 176-178; शशांक को कुछ विद्वान् मालवराज का मित्र समझते हैं और अनुमान करते हैं कि शायद वह मालवराज की मदद के लिये ही कन्नौजकी ओर बढ़ा था। किन्तु ह्वेनसांग और हर्षचरित से उसका मालवराज का साथी व मित्र होने का संकेत नहीं मिलता। संभवतया उत्तरी भारत की विकेन्द्रित स्थिति का लाभ उठाने के लिये वह विजय-लालसा से ही कन्नौज की ओर अग्रसर हुआ था।

मालव-सैन्यदल भंडि को सौंपकर राज्यवर्धन ने उसे थानेश्वर वापस लौट जाने के लिये विदा कर दिया था। अतः कन्नौज की ओर बढ़ते हुये राज्यवर्धन को गौड़ाधिपति ने जब अपनी कूटनीति के जाल में फाँसा उस समय सेनापति भंडि अपने स्वामी (राज्यवर्धन) के साथ न था।

गौड़ाधिप शशांक ने क्या जाल सृजा था, इसका हर्षचरित में स्पष्ट उल्लेख तो नहीं किया गया है, तब भी उक्त घटना के संबंध में कुंतल ने जो वर्णन दिया है, उससे उक्त जाल का भेद अंततः प्रकट हो जाता है। कुंतल ने हर्ष को 'राज्य' के निधन का समाचार देते हुये कहा था कि 'गौड़ के अधिपति ने राज्य को झूठी बातों से अपने विश्वास में फँसा दिया था, जिस कारण वह (राज्य) निःशस्त्र विश्वासपूर्वक अकेले उसके शिविर में गया और वहाँ मार डाला गया।'* कुंतल के इस उल्लेख से स्पष्ट है कि गौड़ाधिपति ने कूटनीति और छल से राज्यवर्धन को भुलावा देकर उसे अकेले भेंट करने के लिये अपने शिविर में आमंत्रित किया और योजनानुसार उसे धोखे से मार डाला। हर्ष के बाँसखेड़ा और मधुबन लेखों में भी राज्य के धोखे से मारे जाने का उल्लेख किया गया है। इन लेखों के अनुसार राज्यवर्धन अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के बाद, सत्य के अनुरोध पर (सत्यानुरोधेन) शत्रु के शिविर में गया और मार डाला गया। हर्षचरित के विवरण से यह भी प्रकट होता है कि गौड़ाधिप शशांक अपनी कपटपूर्ण कूटनीति के लिये कुप्रसिद्ध था। अपने भाई के निधन की चर्चा करते हुए हर्षचरित में एक स्थल पर हर्ष ने कहा है कि सिवाय गौड़ाधिप के दूसरा कौन इस तरह की घृणित हत्या का कार्य कर सकता है (गौडाधिपमपहाय कस्तादृशं महापुरुषं तत्क्षण एव

*—"तस्माच्च हेलानिर्जितमालवानीकमपि गौडाधिपेन मिथ्योपचारोपचितविश्वासं मुक्तशस्त्रमेकाकिनं विश्रब्धं स्वभवन एव भ्रातरं व्यापादितमश्रौषीत्।" हर्षचरित अध्याय—६

निर्व्याजभुजनिर्जितसमस्तराजकं मुक्ताशस्त्रं कलसयोनिमिव कृष्णवर्त्म-प्रसूतिरीदृशेन सर्वलोक-विगर्हितेन मृत्युना शामयेदार्य्यम्—हर्षचरित—अध्याय. ६)। इन उद्धरणों से इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि गौड़ाधिप शशांक ने राज्यवर्धन को धोखे से अपने शिविर में बुलाकर उसके प्राण पखेरु हरे थे।[१] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इस मत की पुष्टि की है।

१—श्री रायबहादुर आर. पी. चंदा और श्री आर. सी. मजुमदार का मत है कि शशांक ने राज्यवर्धन को न्यायोचित युद्ध में परास्त किया था। उनका यह भी कहना है कि राज्यवर्धन कैद कर लिया गया था और उसी हालत में वह शशांक द्वारा मरवा डाला गया (Gaudarajamala, pp. 8-10, Early History of Bengal, p. 17)। इसी तरह श्री आर. डी. बनर्जी का मत है कि राज्यवर्धन गौडाधिप के शिविर में द्वंद्व युद्ध करता हुआ मारा गया था (History of Orissa- vol I., p. 126)।

इन विद्वानों के मत का श्री आर. जी. बसाक ने बहुत निपुणता के साथ खंडन किया है—अतः श्री बसाक का उत्तर यहाँ पर उद्धृत कर देना समुचित होगा—

"....We can not accept the Rai Bahadur's view, which has been supported by Dr. R. C. Majumdar, that Rajyavardhana was possibly 'defeated in a fair fight' and subsequently killed by Sasanka while in a captive state. Had it been a case of death in a fair fight, Harsha probably would not have started on an expensive and elaborate expedition against Sasanka at this tender age. He obtained ready help from his vassals and other inde-

उसने लिखा है कि राज्यवर्धन के समय में शशांक कर्ण-सुवर्ण का राजा था । शशांक 'राज्य' के सुयश और शक्ति से भय खाता था, इसलिये उसने

pendent rulers, because of his appeal to them against the treachery committed by the Bangal king. There was no record of any fight fought between Rajya and Sasanka, and it may be presumed that after the Malva king's defeat by the enormous army of Rajya, Sasanka did not consider it expedient to enter into an open fight. Both these writers are reluctant to hold the view that there was at all any treachery played by Sasanka in killing Rajyavardhana, in spite of the clear accounts of both Bana and Yuan Chwang. Majumdar remarks that we should "revise the openion about Sasanka as handed down by the historians". The spirit of Bana's work is to give vent to his patron king Harsha's, as well as his own, wrath against Sasanka for his foul action. It is only on account of his treachery that Bana gives him contemptuous epithets like Gaudadhama and Gaudabhujanga....".

(History of North-Eastern India, pp. 146-147).

डा० डी० सी० गांगुली की सम्मति है कि यदि राज्य शशांक द्वारा खुले युद्ध में परास्त किया गया होता, तो हर्ष इस पराभव की घटना का उल्लेख अपने लेखों में कभी नहीं करता; क्योंकि प्राचीनकाल में अपने पराभव और पराजय का अपने ही अभिलेखों में उल्लेख करने का रिवाज नहीं मिलता [डा० गांगुली की पूरी सम्मति जानने के लिये देखिये—

षड्यंत्र रचकर उसे (राज्यको) एक सभा में आमंत्रित किया और मार डाला।[२]

शशांक ने राज्य को किस बात के लिये आमंत्रित किया था—हर्ष-चरित में इसका बाण ने स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। लेकिन हर्षचरित के एक भाष्यकार शंकर ने शशांक को राज्य का हत्यारा बतलाते हुये कहा है कि गौड़ के राजा ने एक दूत द्वारा थानेश्वर के राजा राज्यवर्धन को अपनी बेटी देने का वचन देकर उसे अपने शिविर में आमंत्रित किया था। अतः राज्य जब अपने अनुचरों के सहित शत्रु-गृह में भोजन कर रहा था तभी छल से शशांक ने उसकी हत्या कर दी।[3] हर्षचरित में वृद्ध

Indian Historical Quarterly, September 1936, Vol. XII, No. 3, p. 463].

२—"Rajyavardhan came to the throne as the elder brother, and ruled with virtue. At this time the king of Karnasuvarna (Kie-lo-na-su-fa-la-na), —a kingdom of Eastern India—whose name was Sasangka (She-Shang-Kia), frequently addresed his ministers in these words: "If a frontier country has a virtuous ruler, this is the unhappiness of the (mother) Kingdom". On this they asked the king to a conference and murdered him". [Records of western countries (Turner's oriental series), Beal, vol. I. Book V. p. 210].

३—"तथाहि, कृन्तोऽन्तो विनाशो येन स शशाङ्कनामा गौडाधिपतिः। शूराणां राज्यवर्द्धनानुचराणांतत्सहितानां संग्रहमकरोत्।········ तथाहि शशाङ्केन दूतमुखेन कन्याप्रदानमुक्त्वा प्रलोभितो राज्यवर्द्धनः स्वगेहे सानुचेरा भुञ्जमान एव छद्मना व्यापादितः।"

मंत्री स्कन्दगुप्त शत्रु-राजाओं की कुचेष्टाओं से हर्ष को अवगत कराते हुये बहुत से ऐसे ऐतिहासिक और पौराणिक उदाहरण पेश करता है जो इस बात को लक्षित करते हैं कि किस तरह अनेक राजा अपने सरल स्वभाव, विश्वासपूर्णता और अजागरूकता के कारण अपने शत्रुओं द्वारा छल से मार डाले गये। शत्रु के जाल में फँसने का सबसे बड़ा प्रलोभन अथवा कारण स्कन्दगुप्त ने स्त्री को बतलाया है। श्री बसाक के कथनानुसार इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि बाण इस बात से अवगत न होता कि राज्य की हत्या स्त्री के प्रलोभन में पड़ने से हुई है तो वह स्कन्दगुप्त द्वारा हर्ष का ध्यान विशेष रूप से इस ओर (स्त्री के प्रति) आकृष्ट नहीं करता॥[४]

गौड़ का राजा शशांक शायद आर्यावर्त्त की विकेन्द्रित स्थिति से उत्साहित होकर राज्य-प्रसार की लालसा से कन्नौज की ओर आया था। अनुमानतः 'राज्य' द्वारा मालवराज (बुद्धराज) और देवगुप्त के रौंद दिये जाने पर शशांक भी आतंकित हो चला था और इसलिये उसे तब अकेले थानेश्वर के प्रवीर राजा से भिड़ने की हिम्मत न हो सकी। इसीलिये मालूम होता है, उसने कूटनीति की शरण ली और छल से राज्य का अन्त कर डाला। इस घटना के कारण पर प्रकाश डालते

४—Harsha Carita; Chapter VI; "He........lays special stress upon "the blunders of heedlessmen on account of women". He would perhaps not have invited the attention of Harsha to them, unless Bana was conscious that Rajaya's own death must have been due to a cause which involved his heedless action concerning some women". (History of North-Eastern India, pp. 148-149).

हुये ह्वेनसांग ने भी लिखा है कि शशांकराज (गोडाधिप) राज्य की उन्नत सैनिक निपुणता से घृणा अथवा ईर्षा करता था, इसलिये उसने एक षडयंत्र रचकर उसकी हत्या कर डाली।[५]

५—"At the time (when Rajyavardhana was on the throne) the king of Karnasuvarna, in Eastern India, whose name was Sasanka-raja, hating the superior military talents of this king, made a plot and murdered him". (The life of Hiuen-Tsiang; S. Beal, p. 88).

खुले युद्ध के बजाय छल से काम लेने के कारण पर प्रकाश डालते हुये श्री बसाक लिखते हैं—"....It may be presumed that after the Malva king's defeat by the enormous army of Rajya, Sasanka did not consider it expedient to enter into an open fight". (History of North-Eastern India, p. 14).

श्री पानिक्कर का अनुमान है—"A better motive could perhaps be found in the fact that Rajyavardhana, after defeating the Malwa king, attempted to extend his territory eastward and conquer the king of Karnasuvarna who finding himself unable to meet the Rajah of Thaneswar in open field foully murdered him after making a show of submission". (Harsha, Panikkar, p. 13).

अध्याय २

राज्यवर्धन की हत्या हो जाने पर थानेश्वर राज्य का एकमात्र उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई हर्ष ही रह गया था। अतः थानेश्वर के बूढ़े सेनापति सिंहनाद ने शोकविह्वल हर्ष को सांत्वना देते हुये उसे राजकीय कर्त्तव्यों की ओर जागरूक होकर संतप्त जनता की शांति और सुरक्षा के लिये तुरंत राजपद ग्रहण करने को प्रेरित किया। एक साल के भीतर ही जिसे अपने पिता, भाई और बहनोई की मृत्यु का संताप उठाना पड़ा, उसका मन यदि विराग से विचलित होकर संसार से विमुख हो उठा हो, तो यह स्वाभाविक ही था। किन्तु कौटिल्य जैसे महान् प्राचीन राजनीतिज्ञों का कहना था कि राजा को प्रजा का सुख ही अपना सुख और प्रजा के दुःख को अपना दुःख मानना चाहिये, और निजी सुखःदुःख को प्रधानता नहीं देनी चाहिये; अतः इसी परम्परा पर बूढ़े सेनापति सिंहनाद ने भी हर्ष को राजधर्म का स्मरण कराते हुये उसे कर्त्तव्य-अभिमुख होने को उत्साहित किया; 'महाराज (प्रभाकरवर्धन) स्वर्गधामवासी हो चुके हैं, और राज्यवर्धन की दुष्ट भुजंग रूपी गौड़ राजा के दंसन से मृत्यु हो गयी है, अतः इस सर्वनाश के बाद अब केवल तुम्हीं शेष रह गये हो, जो कि पृथ्वी की रक्षा का भार ले सकता है। (अतः अब) तुम अपनी अरक्षित प्रजा को सांत्वना दो।' शोक-विह्वल हर्ष की उदासीनता और अन्यमनस्कता को झकझोरते हुए सिंहनाद ने वीरगर्जन के साथ राजकुमार की मोहनिद्राभंग करते हुये आगे कहा; 'अपने पूर्वजों के मार्ग का परित्याग न करो....... । शोक में डूबा रहना कायरों का काम है, सिंह जिस तरह अपने शिकार पर अधिकार करता है उसी

तरह तुम्हें अपने राजपद के उत्तराधिकार पर अधिकार करना चाहिये।" सिंहनाद की यह पुकार राजकुमार को कर्त्तव्यारूढ़ करने में सफल हुई और शोक मोह को छोड़कर हर्ष ने अपने बूढ़े सेनापति को आश्वस्त करते हुये वचन दिया—"आप जैसे महान् व्यक्ति के उपदेश का अवश्य ही अनुकरण किया जायगा।"[१] अतः प्रकट है कि यद्यपि संसार के छल-प्रपंच और निःसारता के कारण हर्ष का कोमल मन क्षण भर के लिये सांसारिक सुखों और राज्य के ऐश्वर्यों से हट गया था, लेकिन अंत में कर्त्तव्य की प्रेरणा पर उसने अविलंब राजपद ग्रहण करना स्वीकार कर लिया। श्री पानिक्कर का अनुमान है कि शायद राज्यवर्धन का कोई बेटा मौजूद था, और इस कारण हर्ष राजपद लेने से हिचकिचा रहा था।[२] लेकिन प्रतिष्ठित विद्वान का यह अनुमान अहेतुक और मनःकल्पित लगता है। हर्षचरित के वर्णन और हर्ष के प्रति सिंहनाद की यह उक्ति कि—तुम्हीं अब एक शेष रह गये हो—इस बात का अन्तिम प्रमाण माना जाना चाहिये कि राज्यवर्धन निःसंतान मरा था, और बहुत संभव है कि उसका विवाह भी

१—Hc. C & T. pp. 185-186.

२–The young prince's reluctance may have been due merely to the recognition of the fact that the inheritance which he was called upon to succeed to, was not a particularly comfortable one especially as the feudatories had shown themselves refractory and rebellious. It may also be that his brother Rajyavardhana had left an heir to the kingdom, in which case Harsha might have properly enough felt scruples about disinheriting him". (Harsha, by Panikkar, pp. 14-15).

न हुआ हो।* यह अनुमान किया जा सकता है कि सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व राज्यवर्धन का यदि विवाह हो गया होता तो बाण उसका अवश्य ही हर्षचरित में उल्लेख करना न भूलता। श्री पानिक्कर और वि. स्मिथ के अनुमान में राज्य के सामंत और सरदार भी हर्ष के पक्ष में नहीं थे और विद्रोह करने पर आरूढ़ हो रहे थे क्योंकि वे राज्य के छोटे भाई को उत्तराधिकार देना नहीं चाहते थे।[3] यह अनुमान भी उक्त विद्वानों की निजी कल्पना ही प्रतीत होती है। हर्षचरित और ह्वेनसांग किसी के विवरणों से भी यह भासित नहीं होता कि थानेश्वर के सामंतगण हर्ष के प्रति विद्रोही हो रहे थे। इसके विपरीत हर्षचरित से तो यही मालूम होता है कि थानेश्वर के प्रमुख अधिकारी, सरदार और सामंत एकमत से हर्ष के पृष्ठपोषक थे। हर्षचरित के अनुसार हर्ष ने जब गौडाधिप के विरुद्ध अभियान की तैयारी की तो सब तरफ से हस्तिनियों पर आरूढ़ होकर सामंतगण राजप्रासाद में आ एकत्र हुये।[4] यह उल्लेख सामंत

---

* श्री सी. वी. वैद्य को भी राज्यवर्धन के विवाहित होने में सन्देह है—"Rajya was probably not even married—".

(HMHI., I., p. 7).

३–"....the nobles seem to have hesitated before offering the crown to his youthful brother". (The Early History of India, by V. A. Smith, p. 337, IIIrd Edition pub. 1914).

४—Hc. C & T., p. 202. श्री डा० रमाशंकर त्रिपाठी सामन्तगणों के रुख की विवेचना करते हुए लिखते हैं—

"....If they had been turbulent from the begining, they would have given greater trouble to young Harsa after his brother's murder : But

और सरदारों का पक्ष में होना ही साबित करता है न कि विद्रोही होना। हर्षचरित के विवरण से यह भी स्पष्ट है कि राज्य के सभी ऊँचे अधिकारी जैसे सेनापति सिंहनाद और सेनापति स्कंदगुप्त आदि पूरी तरह हर्ष के साथ थे, और उत्तराधिकार सौंपने में हिचकने के बजाय, शोकविह्वल होने के कारण उसे उत्तराधिकार के प्रति अनिच्छुक और अन्यमनस्क देखकर चिंता से व्यग्र हो रहे थे।

हर्षचरित में एक स्थल पर बाण ने लिखा है कि हर्ष यद्यपि अपने व्रत के कारण राज्याधिकार के प्रति उदासीन था, किन्तु राजलक्ष्मी ने उसे राजपद के सर्वलक्षणों सहित बलात् अपने आलिंगन में लिया और उसे सिंहासन पर आरूढ़ होने को विवश किया[५]। इस उद्धरण

---

instead of revolting or creating disturbance they gave their unstinted help and loyal support to their royal master, who was now confronted with the difficult task of bringing the culprit to book". (History of Kanauj, p. 71).

कुंतल जब राज्यवर्धन की मृत्यु का समाचार लेकर राजभवन में हर्ष को मिला था, उस समय भी सामन्तगण वहाँ मौजूद थे--Hc. C&T. p. 188.

५—Hc. C. T., p. 57. He was embraced by the goddess of the Royal prosparity, who took him in her arms and, seiging him by all the royal marks on all his limbs, forced him, however, reluctant, to mount the throne,—and this though he had taken a vow of austerity and did not swerve from his vow, hard like grasping the edge of a sowrd".

के आधार पर वॉटरस ने यह अनुमान किया है कि हर्ष सिंहासन पर आरूढ़ होने से हिचक रहा था क्योंकि राज्यवर्धन शायद कोई उत्तराधिकारी छोड़ गया था और कि शायद उसने बौद्ध-भिक्षु होने का भी व्रत ले रखा था।[६] हर्ष के व्रत के संबंध में वॉटरस का अनुमान भ्रमपूर्ण है। हर्षचरित और हर्ष के अभिलेखों से स्पष्ट है कि वह बहुत समय तक शैवधर्म का अनुयायी और शिव का उपासक रहा और जीवन के उत्तरार्द्ध ही में उसने बौद्धधर्म ग्रहण किया था। हमारी समझ में बाण के उक्त उद्धरण से, जैसा कि डा० त्रिपाठी का अनुमान है, इतना ही लक्षित होता है कि यद्यपि बड़े भाई के होते छोटा होने के नाते हर्ष के लिये सिंहासनारूढ़ होने का कोई अधिकार व अवसर नहीं था, किन्तु परिस्थितियों (अकस्मात् राज्य की हत्या हो जाना) ने उसे बलात् सिंहासन की जिम्मेदारी ग्रहण करने को विवश कर दिया। व्रत उसका क्या था—इसका सही पता लगाना कठिन है। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद राज्यवर्धन ने जब छोटे भाई (हर्ष) को राज्य सौंप संसार परित्याग कर, संन्यास लेने की बात कही थी, तो हर्ष ने शासन-भार स्वीकार करने से इनकार कर अपने बड़े भाई पर जोर डालने के लिये स्वयं भी जंगल में जाकर संन्यासी का जीवन बिताने की बात प्रकट की थी। शायद 'व्रत' से बाण का अभिप्राय इसी उल्लेख से है। लेकिन राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद हर्ष ही वर्धन-राज्य का एकमात्र उत्ताराधिकारी शेष रह गया था जिस कारण वह सिंहासन की जिम्मेदारी लेने को कर्त्तव्य-विवश हो गया, और राजधर्म का पालन तथा वर्धन-राज्य के शत्रुओं का विनाश करना ही अब उसका असली व्रत बन गया।[७] अतः बूढ़े सिंहनाद के समझाने-बुझाने के पश्चात् हर्ष ने सिंहा-

---

६—Yuan Chwang's Travels, Watters Vol I., p. 346.

७—हर्ष के 'व्रत' पर डा० श्री रमाशंकर त्रिपाठी लिखते हैं—"The passage may refer to Harsa's previous vow

सनारूढ़ होने की सम्मति जतलाते हुए कहा था—आप जैसे महान् की सम्मति का अवश्य ही पालन किया जायगा।[८] इस तरह राज्यवर्धन की मृत्यु हो जाने से लगभग ६०६ ई० सन् के अक्तूबर में हर्षवर्धन थानेश्वर के सिंहासन पर आसीन हुआ;[९] किन्तु आर्यावर्त्त के वास्तविक सम्राट् के रूप में उसका अभिषेक होना अभी बाकी था। ह्वेनसांग की जीविनी और यात्रा-विवरण से मालूम होता है कि लगभग ६४१-६४२ ई० में जब वह हर्ष से मिला था, तो हर्ष ने बातचीत के दौरान में चीनी-

---

not to accept the crown when Rajya, overwhelmed by grief, wanted to abdicate in his favour and retire to the forest. Harsa had also resolved to follow in his brother's train, if he persisted in renouncing the throne, thinking within himself: "And the sin involved in transgressing my elder's commands, austerity in fine shall dispel in a hermitage". But his subsequent accession to the throne without any hesitation meant no swerving from his original vow of renunciation, taken under certain conditions, as after his brother's death Harsa, was the only 'sesa' left to come to the succour of both the Thanesvar and Kanauj kingdoms". (History of Kanauj, p. 70).

८—Hc. C & T. pp. 185-186.

९—The Early History of India, V. A. Smith, p. 388.

यात्री को बतलाया था कि सम्राट् हुये उसे तीस वर्ष से ऊपर हो चुके हैं।[१०] हर्ष के इस कथन से लक्षित होता है कि यद्यपि थानेश्वर के सिंहासन पर वह ६०६ ई० में ही आसीन हो चुका था, लेकिन उत्तरीभारत के सम्राट् के रूप में उसका वास्तविक अभिषेक ६ वर्ष बाद याने लगभग ६१२ ई० में हुआ, जब कि वह दिग्विजय कर चुका था।[११]

अलबरुनी के आधार पर यह अनुमान किया गया है कि थानेश्वर के सिंहासन पर बैठने के समय (६०६–०७) से हर्ष ने अपने नाम पर एक नया संवत् भी प्रचलित किया था, अतः उसके अभिलेखों में उल्लेखित संवत् उसी का प्रचलित किया संवत् है।[१२]

१०—The king said: "your disciple, succeeding to the royal authority, has been lord of India for thirty years and more". (The Life of Hiuen-Tsiang, Beal, p. 183).

११—"After six years he (Harsha) had subdued the five Indies". Records of western world I, p. 213. See also; 'on yuan Chwang's Travels by Thomas Watters, pp. 346-347). श्री वि. स्मिथ की भी सम्मति है—"There is reason to suppose that Harsha did not boldly stand forth as avowed king until A. D. 612, when he had been five and a half or Six years on the throne, and that his formal coronation or consecration took place in that year". (The Early History of India, published 1914, p. 338).

१२—"His (Harsha) era is used in Mathura and the country of Kanauj. Between Shri Harsha

सिंहासनारूढ़ होने पर हर्ष के सामने पहला मुख्य उद्देश्य अपने भाई के हत्यारे गौडाधिप शशांक से बदला लेना और अपनी बहिन राज्यश्री को कन्नौज के कारागार से मुक्त करना था। गौडाधिप के कुकृत्य से कुपित हर्ष ने शिव की तरह प्रलयंकारी रौद्र रूप धारण कर लिया था और रोष से काँपते हुये उसके चपल अधर ऐसे प्रतीत होते थे कि शायद वह अपने कोपानल से समग्र राजाओं के रक्त को निःशेष कर डालेगा। उसके वृद्ध सेनापति सिंहनाद ने उसके कोप में उत्साह की आहुति डालते हुए उसे गौडाधिप से इस तरह प्रतिशोध लेने की सलाह दी जिससे कि भविष्य में कोई फिर उसकी तरह आचरण करने का साहस न कर सके। सेनापति ने हर्ष के सामने परशुराम का उद्धाहरण पेश करते हुये कहा कि जिस प्रकार परशुराम ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया था वैसा ही उसे भी करना उचित है। हर्ष ने अपने सेनापति के कथनों से उत्तेजित होकर नियत समय के भीतर पृथ्वी को गौडों से खाली करने की प्रतिज्ञा घोषित की और साथ ही अपने महासंधिविग्रहाधिकृत अवन्ति को समग्र राजाओं के नाम यह

---

and Vikarmaditya there is an interval of 400 years, as I have been told by some of the inhabitants of that region. However in the Kashmirian calendar I have read that Sri Harsha was 664 years later then Vikarmaditya". [Alberuni's India, by Dr. E. C. Sachau, Vol II, p. 5. १९५१ के ग्वालियर इतिहास कांग्रेस में डा० आर० सी० मजुमदार ने अलबरुनी के इस उद्धरण के आधार पर यह सन्देह प्रकट किया था कि हर्ष ने शायद कोई संवत् नहीं प्रचलित किया था। लेकिन इस पर जो वाद-विवाद हुआ उसका अन्तिम निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका।

अनुशासन घोषित करने की आज्ञा दी कि वे सब या तो राज-कर देने को प्रस्तुत हों या रण में मुकाबला करने को तैयार हो जायँ।*

इस अनुशासन के प्रेषित होने के साथ ही हर्ष ने हस्ति-सैन्य के सेनापति स्कंदगुप्त को बुलवाया और उसे शीघ्र अभियान की तैयारी करने की आज्ञा दी। हर्ष ने सेनापति को बतलाया कि उसे अपने भाई के पराभव का बदला लेना है, इसलिये वह अभियान में जरा भी शिथिलता नहीं होने देना चाहता। अतः अपने स्वामी के निर्देशानुसार सेनापति स्कन्द ने शीघ्र ही अभियान की पूरी तैयारियाँ कर दीं, और तब अनेक ज्योतिषियों द्वारा निर्दिष्ट एक शुभ दिन को हर्ष अपने शक्तिशाली सैन्य-दल के

---

* "He thus like Siva put on a Shape of terror". ...."Think not of the Gauda king alone, so deal that for the future no other follow his example. ....'Parasurama avenged, when his father was slain". ...."By the dust of my honoured Lord's feet, I swear that unless in a limited mumber of days I clear this earth of Gaudas, and make it resound with fetters on the feet of all kings who are excited to insolance by the elasticity of their bows, then will I hurl my sinful self like a moth, into an oil-fed flame"....

"Let all kings prepare their hands to give tribute or to grasp sowrds,....let them bend their heads or their bows grace their ears with eiher my commands or their bowstrings".

(Hc. C & T., pp. 187-188)

साथ गौडाधिप (शशांक) तथा अन्य शत्रुराजाओं को उन्मूलित करने के लिये राजधानी (थानेश्वर) से निकल पड़ा। दिग्विजय के लिये जाते हुये हर्ष को थानेश्वर की हर्षोत्पल प्रजा ने 'जय' के नारों के साथ विदा दी।[१३]

इस अभियान के समय हर्ष के साथ कितना सैन्यदल था, बाण ने इसका उल्लेख नहीं किया है। किन्तु ह्वेनसांग के विवरण से प्रकट होता है कि हर्ष ५,००० हाथी, २,००० अश्व और ५०,००० पैदल लेकर दिग्विजय के लिये निकला था।[१४] इस विशाल सैन्य का सामान और शस्त्र ढोने के लिये सहस्रों खिच्चर, गदहे और बैल भी अभियान-दल के साथ शामिल थे।[१५]

राजधानी से चलने पर कुछ ही दूर जाकर हर्ष प्रथम पुण्यमति सरस्वती नदी के तट पर ठहरा और दिग्विजय की सफलता के लिये उसने वहाँ पर पूजा संपन्न की। सरस्वती तट से आगे बढ़ने पर हर्ष ने कथक नामक स्थान में पहला पड़ाव डाला। यहाँ पर प्राग्ज्योतिप अथवा आसाम के राजा भास्करवर्मन (भास्करद्युति) का दूत हंसवेग हर्ष से मिला और उसने अपने राजा की तरफ से वर्धन-सम्राट् को राजकीय उपहार भेंट किये। हंसवेग ने राजा भास्करवर्मन की तरफ से मैत्री का प्रस्ताव भी उपस्थित किया और उसकी स्वीकृति के लिये जोर दिया। हर्ष ने मित्रता के इस लाभप्रद प्रस्ताव[१६] का स्वागत करते हुये भास्करवर्मन को बिना हिचके अपना

१३—Hc. C & T. pp. 198-201.

१४—Records of western countries, vol. I. Book. v, p. 213.

१५—Hc. C & T. p. 201.

१६—भास्करवर्मन का सहयोग शशांक को दबाने में सहायक हो सकता था।

मित्र स्वीकार कर लिया। स्पष्ट है कि गौड अथवा कर्णसुवर्ण के पड़ोसी राजा शशांक की बढ़ती हुई शक्ति से भास्करवर्मन को खतरा पैदा हो गया था, और शायद इसी कारण उसने स्वरक्षार्थ गौड़ाधिप के विषम-शत्रु हर्षवर्धन से बिना समय बिताये मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया था।[१६] यह मैत्री सम्बन्ध बराबरी के आधार पर स्थापित हुआ था, या यह एक कमजोर राजा का शक्तिशाली राजा से आत्मनिवेदन था, इसका निर्णय करना कठिन है। श्री आर० के० मुकर्जी ने इसे भास्करवर्मन का आत्मनिवेदन और स्वेच्छा से प्रभुता स्वीकार करना बतलाया है। इसके विपरीत श्री डा० त्रिपाठी ने इसे बराबरी की मित्रता के रूप में लिया

१६—सी. वी. वैद्य की सम्मति में—"Kumar-raja of Kamrupa was perhaps, previously the enemy of Sasanka, for which reasons he allied himself with the Emperor of Sthanesvara" (HMHI. vol. I. p.10).

डा० श्री रमाशंकर त्रिपाठी की राय है—"He (Bhaskar-varman) was in great fear of his powerful neighbour, Sasanka, and this was probably the reason why he so readily extended the hand of friendship to Harsa at the initial stage of his campaigns".

(History of Kanauj, p. 104).

श्री आर. डी. बनर्जी की सम्मति है—"Bhaskarvarman, of Assam may have felt the weight of Sasanka's arms before he sent an ambassador to Harsa to seek for his alliance". (History of Orissa, vol. I., p. 129).

है।[१७] हर्षचरित के अनुसार अभियान से पूर्व हर्ष ने यह अनुशासन प्रेषित किया था कि विभिन्न प्रदेशों के राजा या तो स्वतः उपहार लेकर उसके समक्ष उपस्थित हों या युद्ध के लिये तैयार रहें। इस अनुशासन के आधार पर प्रत्यक्षतः यह अनुमान किया जा सकता है कि भास्करवर्मन

१७—श्री आर. के. मुकर्जी लिखते हैं—"The king of distant Kamrupa (Assam) offered him allegiance of his own accord and was anointed king by his lige lord, as stated by Bana (अत्र देवेन अभिषिक्तः कुमारः)।"

डा० त्रिपाठी बाण द्वारा उल्लेखित कुमार से अभिप्राय भास्करवर्मन के बजाय माधवगुप्त से अनुमान करते हैं। यद्यपि उनके इस अनुमान में बहुत सार प्रतीत होता है; लेकिन कुमार को माधवगुप्त या कोई अन्य व्यक्ति मान लेने से भास्करवर्मन का आत्मनिवेदन और प्रभुता स्वीकार करना गलत नहीं सिद्ध हो जाता। हर्ष ने जब ह्वेनसांग को अपने पास भिजवाने के लिये आसाम के राजा को सन्देश भेजा था तो भास्करवर्मन ने प्रत्युत्तर में यह कहला भेजा कि हर्ष चाहे तो उसका सिर ले सकता है, लेकिन वह अपने महान् अतिथि को विदा नहीं कर सकता। लाइफ (The life of Hiuen-Tsiang) के विवरणानुसार इस प्रत्युत्तर को पाकर "The Siladitya-raja was greatly enraged, and Calling together his attendants, he said" : "Kumar-raja despises me. How comes he to use such coarse language in the matter of a single priest".

अतः रोष में भरकर हर्ष ने तुरन्त कहला भेजा कि "Send the head, that I may have it immediately by my messanger who is to bring it here".

इस सन्देश से कुमार (भास्करवर्मन) अत्यंत भयभीत हो उठा और

ने हर्ष की उठती हुई शक्ति से दबकर ही आत्मनिवेदन के लिये अपना राजदूत हंसवेग उसके पास भेजा था। भास्करवर्मन शशांक के प्रति हर्ष की शत्रुता से भी अवश्य परिचित रहा होगा, अतः उसे यह भी शंका हो सकती थी कि गौड को अधिकृत करने के पश्चात् हर्ष कामरूप पर भी आक्रमण कर सकता है। अतः प्रत्यक्ष है कि भास्करवर्मन ने

"Kumara, deeply alarmed at the folly of his language—immediately ordered his army....to be equipped, and his ships, 30,000 in number. Then embarking with the Master of the Law they passed up the Ganges together in order to reach the place where Siladitya-raja was residing" (Life, Beal, p. 172).

'लाइफ' आगे लिखता है कि हर्ष जब ह्वेनसांग से भेंट करने कुमार-राजा के शिविर की ओर बढ़ा तो—"....He (Kumar) himself, with his ministers, went forth a long way to meet him.

As Siladitya-raja marched, he was always accompanied by several hundred persons with golden drums, who beat one stroke for every step taken...." Siladitya alone used this method—other kings were not permitted to adopt it". (Ibid, p. 173).

उपरोक्त उद्धरण इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि आसाम का कुमार-राजा हर्ष की शक्ति से डरता था और उसकी आज्ञा को टालने की उसमें कोई साहस व क्षमता न थी। अपितु कुमार-राजा हर्ष को अपना प्रभु समझता था जिसके कोप को शान्त करने के लिये उसे ह्वेनसांग को लेकर

हर्ष जैसे शक्तिशाली राजा से आत्मरक्षार्थ ही आत्मनिवेदन किया था। अतः दोनों में बराबरी के बजाय प्रभु और सामन्त का सम्बन्ध था; यद्यपि यह भी सही है कि आसाम की अन्तर-राजनीति में थानेश्वर की तरफ से कभी कोई दखल नहीं दिया गया।

दूसरे दिन आसाम के राजदूत हंसवेग को विदा करके हर्ष तेजी के साथ गौड़ाधिप का पीछा करने के लिये आगे बढ़ा। इस अभियान के बीच एक दिन हर्ष को एक पत्र-वाहक से यह समाचार मिला कि सेनापति भंडि पराजित मानव-सैन्यदल और लूट के सामान सहित पहुँच रहा है। अतः हर्ष सेनापति से मिलने के लिये ठहर गया। शीघ्र ही भंडि भी आ पहुँचा और उसने सम्राट् को राज्यवर्धन की हत्या होने की पूरी कथा कह सुनायी। हर्ष ने फिर भंडि से अपनी बहिन के सबंध में प्रश्न किया जिस पर उसने यह निवेदन किया कि जन-साधारण

स्वयं शिलादित्य के पास उपस्थित होना पड़ा। शिलादित्य जब कुमार के शिविर की तरफ गया तो उसे एक स्वामिभक्त सामन्तकी तरह सम्राट् की आव-भगत करने को आगे आना पड़ा। वह उस तरह के स्वर्ण-दुंदमी अथवा ढोल भी इस्तेमाल नहीं कर सकता था जो हर्ष की यात्रा के अवसर पर बजाये जाते थे। किन्तु इन उद्धरणों के अर्थ और अभिप्राय को किनारे कर डा० त्रिपाठी कहते हैं—"Obviously it can not follow from this yielding to the pressure of a valued ally that the king of Assam accepted the suzerainty of Harsa". (History of Kanauj, p. 105).

कन्नौज और प्रयाग की सभाओं में विभिन्न सामन्त राजाओं की तरह कुमार-राज का भाग लेना, उसके मित्र, साथी और सामन्त होने का ही द्योतक हो सकता है, न कि बराबरी का राजा होने का जैसा कि डा० त्रिपाठी अनुमान करते हैं (Ibid, pp. 105-106)।

के मुँह से उसे यह मालूम हुआ है कि राज्यवर्धन की हत्या के बाद गुप्त नाम के एक कुलपुत्र ने कान्यकुब्ज पर अधिकार करके राज्यश्री को बंधन-मुक्त कर दिया था और अब वह कहीं विंध्याचल के जंगलों में है।[१८]

भंडि के उल्लेख से प्रतीत होता है कि राज्यवर्धन की हत्या के बाद शशांक अधिक दिन मौखरी-राजधानी पर अधिकार नहीं रख सका और गुप्त नाम के किसी एक कुलपुत्र ने कन्नौज उससे छीनकर अपने अधिकार में कर लिया।* गुप्त-कुलपुत्र ने सौजन्यता से काम लिया और वर्धन-कन्या व मौखरी-रानी राज्यश्री को बंधन से मुक्त कर स्वतंत्र कर दिया। यह गुप्त कुलपुत्र कौन था—इसका ठीक से अंदाज लगाना कठिन है। शायद वह मगध और मालवा के गुप्त-वंश से संबंधित हो। डा० डी० सी० गांगुली के अनुमान में गुप्त-कुलपुत्र शायद हर्ष के अभिलेखों का देवगुप्त था।[१९] किंतु यह अनुमान सही नहीं जँचता क्योंकि देवगुप्त का उल्लेख करनेवाले अभिलेखों के अनुसार वह राज्यवर्धन द्वारा पहले ही अपने मित्रों सहित पराजित कर कुचल दिया गया था। श्रीहॉल गुप्त और गौड़ाधिप को एक ही व्यक्ति समझते हैं—गुप्त और गौड़ाधिपति को एक ही व्यक्ति मानकर कुछ विद्वानों ने यह भी अनुमान किया है कि शशांक गुप्तवंश का था।

१८—Hc., C & T., pp. 223-224.

* भंडि ने कहा था—'देवभूयम् गते देवे राज्यवर्धने गुप्तनाम्ना च ग्रहिते कुशस्थले।'

१९—IH, September, 1936, vol. XIII, 3. p.464. श्री बसाक की सम्मति में—"....The Gupta nobleman belonged to a family which was friendly to the house of the Maukharis or the Vardhanas or to both". (History of North-Eastern India, p. 150).

किंतु हर्षचरित के अध्ययन से गुप्त और गौड़ाधिप का एक ही व्यक्ति होना प्रमाणित नहीं होता, इसलिये शशांक को गुप्त या गुप्त-कुलपुत्र से मिलाना और उसका गुप्त-कुल से संबंध जोड़ना[२०] असंगत प्रतीत होता है। श्री रायबहादुर आर० पी० चंदा का अनुमान है कि गुप्त-कुलपुत्र ने अपने प्रभु शशांक के निर्देष पर ही राज्यश्री को बंधन-मुक्त किया था।[२१] राज्यवर्धन के नृशंस हत्यारे शशांक द्वारा उक्त प्रकार की सौजन्यता का व्यवहार किया जाना, श्री आर० जी० बसाक के

२०—श्री हॉल का अनुमान है कि जिस गौडाधिपति ने राज्यवर्धन की हत्या की थी 'गुप्त' उसी का नाम है (Vasavadatta, p. 52)। यदि गुप्त और शशांक एक ही व्यक्ति होते तो मंडि उसका अवश्य ही गौडाधिप के रूप में उल्लेख करता। साथ ही गुप्त को हर्षचरित में कुलपुत्र भी कहा गया है जिससे स्पष्ट है कि वह गौड का राजा नहीं था।

श्री हॉल के मत का विरोध करते हुए श्री ऐलन् लिखते हैं—"Hall supposed the man who slew Rajyavardhana to be the same as he who took Kanyakubja, but it is clear from the second reference to Gupta as a Kulaputra or noble that he can not be a Sasanka". (Catalogue of Indian Coins, Gupta Dynasties, introduction, p. LXIV).

२१—श्री आर. जी. बसाक की सम्मति में गौडाधि शशांक सम्भवतया मंजुश्रीमूलकल्प में उल्लेखित नागवंशी गौड राजा जय (जयनाग), और डा० बार्नेट द्वारा प्राप्त अभिलेख में वर्णित कर्णसुवर्ण के राजा जयनाग के कुल से सम्बन्धित था—अथवा वह गुप्त वा नाग किसी भी वंश से सम्बन्धित नहीं था (History of North-Eastern India, pp. 138-140).

साथ हमें भी अप्रत्याशित प्रतीत होता है।[२२]

भंडि से कन्नौज के समाचारों को जान लेने के बाद हर्ष ने गौडाधि (शशांक) का पीछा करने का कार्यभार सेनापति भंडि को सौंपा और अपने सैन्यदल को गंगातट पर शिविर में ही रुके रहने का आदेश देकर स्वयं माधवगुप्त और कुछ एक सामंतों के साथ बहिन को ढूँढ़ निकालने के लिये विंध्याचल के जंगलों और पहाड़ों में घुस गया।[२३] विंध्याचल के अँचल में घुसने पर हर्ष की विंध्य के सामंत सर्भकेतु के बेटे व्याघ्रकेतु से भेंट हुई। व्याघ्रकेतु ने हर्ष को विंध्य के अटवीराज भूकम्प के भतीजे निर्घात से मुलाकात करायी। निर्घात सम्राट हर्ष को बौद्ध-आचार्य दिवाकरमित्र की कुटी में ले गया। दिवाकरमित्र को देखकर हर्ष को स्मरण हुआ कि यह बौद्ध-आचार्य उसके बहनोई ग्रहवर्मन का बाल-साथी रह चुका है।[२४] हर्ष ने जब दिवाकरमित्र को अपनी बहिन राज्यश्री की ढूँढ़ में आने का वृत्तांत सुनाया तभी आचार्य के एक शिष्य ने उत्सुकता के साथ यह बतलाया कि उसने सुबह ही एक युवती को बहुत-सी अन्य स्त्रियों से घिरे नैराश्य के कारण चितारोहण की तैयारी करते हुये देखा है और कि वह अभी उधर से ही यह समाचार अपने आचार्य को देने आया है ताकि उसकी रक्षा की जा सके।[२५] इस समाचार को सुनते ही हर्ष विचलित हो उठा

२२—Even supposing he was a partisan of Sasanka, he (Gupta-nobleman) did this noble deed at his own instance, and not at his king's bidding". (History of North-Eastern India, p. 150).

२३—Hc., C & T., p. 224.

२४—Ibid, p. 233.

२५—Ibid, pp. 240-241.

और उस भिक्षु, आचार्य दिवाकरमित्र और अपने सामंतों को लेकर तुरंत उस स्थान के लिये चल पड़ा। जब हर्ष चितारोहण के स्थान पर पहुँचा तो उसने दुःख से बेसुध राज्यश्री को चिता में चढ़ने की तैयारी करते हुये पाया। हर्ष ने पहुँचते ही अपनी बहिन के माथे पर स्नेह का शीतल हाथ रखा जिससे राज्यश्री अपने सुध में चली आयी और आँख खोलने पर उसने अपने भाई को अपने निकट खड़ा पाया। हर्ष अपनी बहिन को चिता के पास से हटाकर निकट ही के एक वृक्ष की शीतल छाया के नीचे ले गया। इसी बीच आचार्य दिवाकरमित्र ने जल मँगवाकर दोनों भाई-बहिनों को परितृप्त किया। हर्ष ने दिवाकरमित्र की ओर संकेत कर अपनी बहिन को बतलाया कि ये बौद्ध-आचार्य उसके पति के बाल-साथी रह चुके हैं। भक्ति के साथ आचार्य के प्रति आकृष्ट होकर राज्यश्री ने बौद्ध-भिक्षुणी बनने की इच्छा प्रकट की। लेकिन भावावेश में कहे गये राजकन्या के वचनों को सुनकर आचार्य ने उसके भिक्षुणी बनने के संकल्प को टाल दिया और सलाह दी कि उसे अब अपने भाई के निर्देशानुसार ही चलना चाहिये। हर्ष ने भी अपने स्नेहमय-भावों को प्रकट करते हुए यह इच्छा प्रकट की कि उसकी खोई और पुनः प्राप्त हुई प्रिय बहिन कुछ दिन उसके साथ ही रहे ताकि अपने तमाम कर्त्तव्यों को भुलाकर भी वह कुछ समय उसकी सेवा कर सके। साथ ही हर्ष ने आचार्य के सामने यह संकल्प भी प्रकट किया कि "जब मैं अपने उद्देश्यों को पूरा कर लूँगा तो मैं और वह दोनों साथ ही पीले-वस्त्र धारण कर लेंगे"।[२६] आचार्य दिवाकरमित्र से बिदा लेकर हर्ष अपनी बहिन सहित विंध्याचल से गंगा के तट पर अपने शिविर कथक को लौट आया।

हर्ष के इस प्रत्यागमन के साथ बाण का हर्षचरित भी समाप्त हो

२६—Ibid, pp. 257-258.

जाता है। बाण से हमें यह नहीं मालूम होता कि शशांक के विरुद्ध जो अभियान किया गया था उसका अंतिम फल क्या हुआ? किन्तु हर्ष-चरित के पूर्व-वृत्तान्त के आधार पर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि शशांक के बाद, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं गुप्त-कुलपुत्र ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया था, इसलिये जब हर्ष ने उसका पीछा करने के लिये कन्नौज की ओर कूच किया तो सब तरफ से शत्रुओं का भय पैदा हो जाने से वह कन्नौज का मोह छोड़कर सकुशल अपने राज्य को लौट जाने के लिये प्रत्यागमन् कर चुका था। भास्करवर्मन से हर्ष की संधि हो जाने से शशांक को अपने पार्श्व के पड़ोसी से भी अत्यधिक भय पैदा हो गया था, इसलिये उसको कुशलता इसी में थी कि वह शीघ्रता से अपने राज्य को वापस लौट जाता।[२७] उसके लौट जाने से गुप्तकुलपुत्र को गौड़ाधिपति से मुक्ति मिल गयी थी लेकिन हर्ष के सामने कन्नौज पर अधिकार बनाये रखना उसके लिये भी संभव न था; इसलिये थानेश्वर के सैन्यदल के बढ़ाव के साथ वह भी मालूम होता है कन्नौज को उसी के भाग्य पर छोड़कर अंतर्द्धान हो गया? भंडि के उल्लेखों के बाद गुप्त-कुलपुत्र का हमें फिर कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता।

अतः हर्ष के विंध्याचल से लौटने के समय मौखरी-राजनगरी शासक-विहीन होने के कारण अव्यवस्था और अराजकता का केन्द्र बनी हुई थी। हर्ष इस स्थिति से अवश्य परिचित था, इसलिये शशांक को दबाने के कार्य में भंडि की मदद के लिये जाने के बजाय उसने पहले अपनी बहिन

२७—डा० त्रिपाठी की भी सम्मति है कि "....In the face of the new odds arrayed against Sasanka strategy certainly demanded that he should beat a masterly retreat". (History of Kanauj, p. 74).

की राजनगरी कन्नौज की स्थिति सम्हालने का कार्य अधिक आवश्यक समझा। आचार्य दिवाकरमित्र के सामने हर्ष ने कहा भी था कि अपनी बहिन के हित के लिये यदि उसे अपने कर्त्तव्यों अथवा प्रतिज्ञाओं को कुछ समय के लिये स्थगित भी रखना पड़े तो वह ऐसा करने में न हिचकेगा। डा० त्रिपाठी के शब्दों में हर्ष के इस कथन का यही अभिप्राय था कि वह अपने शत्रुओं को दबाने का कार्य स्थगित करके कुछ समय कन्नौज में रुककर वहाँ की सुव्यवस्था करने के लिये प्रस्तुत था।[२८]

हर्षचरित के वृत्तान्तानुसार ग्रहवर्मन निःसंतान मरा था और उसके कोई बंधु-बांधव भी शेष न रह गये थे।[२९]—अतः कन्नौज आने पर वहाँ के राजनीतिज्ञों और हर्ष के सामने सबसे प्रमुख समस्या प्रथमतः कन्नौज-राज्य के उत्तराधिकार को निश्चित करना था। ह्वेनसांग से मालूम होता है कि कन्नौज के राजनीतिज्ञों ने अपने प्रमुख नेता बानी (वार्नी या पोनी)[३०]—की सलाह पर कन्नौज के उत्तराधिकार की

२८--Harsa had further declared his intention of cherishing her (Rajyasri) 'for a while' even though it meant the neglect of royal duties, which expression probably implies that he was prepared to stay in Kanauj for some time in order to settle its affairs, before he could undertake the fulfilment of his vow to punish those who had become inimical....". (Ibid, p. 75).

२९—Hc., C & T., pp. 244-254.

३०—वार्नी को विद्वान सामान्यतः हर्षचरित के भंडि से मिलाते हैं। लेकिन बानी, वार्नी या पोनी का भंडि से मिलाया जाना भ्रममूलक

समस्या हर्ष को ही अपना राजा मानकर हल कर ली। हर्ष ने पहले तो कन्नौज का राजपद स्वीकार करने में अनिच्छा प्रकट की, लेकिन अंत में बोधिसत्व के निर्देशानुसार उसने राज्यग्रहण करना स्वीकार कर लिया। बोधिसत्व ने उसकी गुप्त रूप से सहायता करने का भी वचन दिया,

---

है। बानी व भंडि के नामों में कोई तादात्म नहीं प्रतीत होता। डा० त्रिपाठी के शब्दों में "....beyound the similiarity of sound there is hardly any Justification for it,....the latter (Bhandi) was a leading figure in the Thanesvar court, and not in Kauauj".

(History of Kanauj, p. 75, fn. 1.).

निःसंदेह भंडि कन्नौज का राजनीतिज्ञ भी नहीं था; वह थानेश्वर का एक विश्वस्त सेनापति था और जब कन्नौज में राजनैतिक उत्तराधिकार का निश्चय हुआ उस समय वह शायद पूरब की तरफ गौडाधिपति शशांक का पीछा करने पर लगा था, जैसा कि हर्षचरित के बयान से प्रकट है। श्री हॉल को बानी का भंडि से मिलाने में यही कठिनाई प्रतीत हुई है—"....the minister Po-ni, whose name M. Julien reads into Bhani and Bani, and into whose mouth a long speech is put, is in all probability, my Bhandin or Bhandi,....; only Bana provides Bhandin with an alibi at the time Hiouen-Thsang sets Po-ni to haranguing at Kanyakubja". (Kadambri, P. Peterson, pt. II, Introduction, p. 65).

श्री पी० पिटरसन् हॉल की इस कठिनायी को यह कहकर सरल कर लेते हैं कि ह्वेनसांग द्वारा उल्लेखित घटना तभी घट चुकी थी जब कि हर्ष राजधानी में ही था और भंडि वापस लौट चुका था। (जो बात की

लेकिन उसे कन्नौज के सिंहासन पर न बैठने तथा महाराज की उपाधि की जगह केवल राजपुत्र और शीलादित्य की उपाधियाँ ग्रहण करने की सलाह दी। इस वृत्त से प्रकट है कि शशांक और गुप्त-कुलपुत्र के पलायन के बाद चूँकि मौखरी राजवंश में कोई उत्तराधिकारी शेष न रह गया था; इसलिये कन्नौज के हितैषी और विजेता के रूप में हर्ष को ही अब कन्नौज-साम्राज्य का राजा व अधिकारी स्वीकार किया गया। ह्वेनसांग के अनुसार कन्नौज का राज्य-ग्रहण करने के तुरंत बाद हर्ष दिग्विजय के लिये निकला और लगभग ६ वर्ष के भीतर उसने अपनी विजय-यात्रा पूरी की। मालूम होता है कि ६ वर्ष की प्रथम विजय-यात्रा पूरी करने के बाद ही हर्ष थानेश्वर से राजधानी हटाकर कन्नौज ले

हर्षचरित को देखते हुये बिलकुल असम्बद्ध और असंगत है)—"I may add in passing that the circumstances that Bhandin according to Harsha Charita, accompanied Rajya-vardhana on his fatal expedition, and was therefore absent from the capital when news of his brother's murder reached Harsha, does not, as Hall seems to suppose, throw any difficulty in the way of identification. Harsha set out to avenge his brother's death as soon as was practicable after he heard of it, he had not gone far before he met Bhandin returning from the overthrow of the Malava king. There is no reason, rather every reason to the contrary, for placing the incidents referred to by Hioven-Thsang prior to Harsha's departure from the capital".

गया; क्योंकि राज्य का विस्तार हो जाने से यह अब आवश्यक भी हो गया था।[३१]—

ह्वेनसांग ने कन्नौज का वर्णन देते हुये भूल से हर्ष के पूर्वजों—प्रभाकरवर्धन और राज्यवर्धन को भी कन्नौज का राजा बतलाया है और कहा है कि राज्यवर्धन की हत्या होने पर ही कन्नौज के राजनीतिज्ञों ने हर्ष को उत्तराधिकार सौंपा था। ह्वेनसांग के इस भ्रमात्मक विवरण के आधार पर कतिपय विद्वानों ने यह अनुमान किया है कि शायद थानेश्वर के वर्धनसिंहासन पर बैठने में भी हर्ष असमंजस में पड़ गया था और इसका कारण संभवतया राज्यवर्धन का कोई उत्तराधिकारी मौजूद होना था। वि० स्मिथ कहता है कि इसी दिक्कत को सरल करने के लिये शायद बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की अमनुति लेने का बहाना किया गया। किन्तु इस पर भी हर्ष तत्काल महाराज बनने का साहस न कर सका और फांग-ची के आधार पर वि० स्मिथ आगे यह अनुमान करते हैं कि हर्ष कुछ समय (लगभग ६१२ ई० तक) अपनी बहिन अथवा अपने भाई के बालक के संरक्षक रूप में ही शासन करता रहा।[३२] राज्यवर्धन की कोई संतान नहीं थी,

---

३१—श्री बसाक की सम्मति है कि कन्नौज प्रथम गौड-अभियान के बाद राजधानी बनायी गयी (History of North-Eastern India, p. 151).

३२—श्री वि० स्मिथ; Early History of India, pub. 1914, IIIrd editiou, p. 337—"The murdered king was too young to have a son capable of assuming the cares of government, and the nobles seem to have hesitated before offering the crown to his youthful brother. But the disorder and anarchy from which the country suffered....forced the cou-

यह हम पहले ही बतला चुके हैं और थानेश्वर व कन्नौज की घटनायें दो भिन्न घटनायें हैं—इसमें भी कोई संदेह नहीं। थानेश्वर की घटना के निर्देशक बाण हैं और कन्नौज की घटना के निर्देशक ह्वेनसांग हैं। ह्वेनसांग के विवरण में हर्ष को केवल उत्तराधिकार सौंपे जाने का उल्लेख

---

ncillors....to come to a decision concerning the succession.

The ministers, acting on the advise of Bhandi, ...ultimately resolved to invite Harsha to undertake the responsibilities of the royal office, for some reason, ...he scrupled to express his consent, and it is said that he consulted a Buddhist oracle befoɪe accepting the invitation. Even when his reluctance, ...had been overeome by the favourable response of the oracle, he still sought to propitiate Nemesis by abstaining at first from the assumption of the kingly style,....

These curious details indicate clearly that some un-kuown obstacle stood in the way of Harsha's accession, and compelled him to rely for his title to the crown upon election by the nobles rather than upon his hereditary claims. The chinese work fang-chih represents Harsha as administrating the government in conjunction with his widowed Sister,....“which suggests that he at first considered himself to be Regent on behalf of his sister, or possibly an infant child of his late brother”.

है और राज्यश्री की तरफ से संरक्षक बनने का उसने कहीं कोई संकेत नहीं किया है।[३३] हर्ष के अभिलेख, दान-पत्र और सिक्कों में राज्यश्री

३३—ह्वेनसांग के विवरण और वॉटरस् द्वारा उल्लेखित फांग-ची के आधार पर (Watters vol. I., p. 345) बहुत से अन्य विद्वानों की भी राय है कि प्रारम्भ में हर्ष ने राजश्री से मिलकर ही कन्नौज का शासन किया—डा० बसाक लिखते हैं—"....he (Harsha) administered the Empire in co-partnership with his sister".

(History of North-Eastern India, p. 151).

श्री एन० रे० की सम्मति है—"Harsa was a regent". (IHQ., 1927, p. 773).

डा० त्रिपाठी की सम्मति है—"Now, this unostentatious title of Kumara (or Rajputra--Siladitya—as related by Hiuen-Tsang) definitely suggests that although, according to Bana, Harsa was already king of Thanesvar, in Kanauj he was merely charged with the duty of keeping the machinery of the government running, and his political status there was originally no better than that of a guardian or, as mr. N. Ray says, "Regent". Indeed this fact is even corroborated by a chinese work,....fang-chih.

It would appear that with the lapse of time, when Harsa had thoroughly made his position secure, and laid opposition, if any, to rest, he formally transferred his capital from Thanesvara

का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। यदि हर्ष, राज्यश्री की तरफ से संरक्षक होता अथवा वह और उसकी बहिन दोनों मिलकर कुछ समय कन्नौज का शासक रहे होते तो राजकीय लेखों, दान-पत्रों व कन्नौज में

---

to Kanauj, and declared himself soverign ruler of the latter kingdom also by assuming the Imperial titles, which appear in his inscriptions. Thus beginning with a modest guardianship or regency, Harsa's imposition of his authority over Kanauj was a sort of quiet usurpation....".

[हमें विस्मय यह देखकर होता है कि ह्वेनसांग के उस स्पष्ट कथन के बावजूद कि कन्नौज का राज्य वहाँ के राजनीतिज्ञों ने हर्ष को सौंप दिया था, उसके 'कुमार' की उपाधि से बढ़ा-चढ़ाकर निष्कर्ष निकाले गये हैं। इसके प्रमाण में चीनी ग्रन्थ फांग-ची को उल्लेखित किया जाता है जिसका हर्ष के सम्बन्ध में स्वयं प्रमाणित ग्रन्थ होना विवादास्पद् हो सकता है। फांग-ची के उल्लेख पर वॉट्रस लिखता है—The fang-chih represents Harshavardhana as "administrating the government in conjunction with his widowed sister". a statement which is not, I think, either in the Life or the Records". (Watters, vol., p. 345). हमें स्मरण रखना चाहिये कि यदि हर्ष और राज्यश्री दोनों मिलकर राज्य किये होते तो ह्वेनसांग की जीवनी व विवरण किसी में अवश्य इस महत्व-पूर्ण घटना का उल्लेख हमें मिलना चाहिए था। लाइफ और रेकर्डस में बहुत-सी अप्रमुख बातों व घटनाओं तक का विस्तार में उल्लेख है, तब ऐसी प्रमुख बात का उल्लेख न किया जाना यही प्रकट करता है कि ऐसी कोई बात थी नहीं।]

प्रचलित किये गये सिक्कों में राज्यश्री का नाम अवश्य ही आना चाहिये था।

बाण और ह्वेनसांग दोनों से मालूम होता है कि हर्ष ने दिग्विजय को निकलते समय सबसे प्रथम अपने भाई के हत्यारे गौड़ के राजा शशांक से बदला लेने का निश्चय किया था। थानेश्वर से वह इसी इरादे से अभियान पर निकला था। लेकिन बीच में उसे अपनी बहिन की खोज और कन्नौज की सुव्यवस्था करने के खातिर रुक जाना पड़ा था। बाण से यह पता नहीं चलता कि गौड़ के विरुद्ध पहिले अभियान में भंडि ने क्या किया और शशांक के साथ उसका युद्ध हुआ भी था या नहीं? किन्तु इतना निश्चित है कि शशांक बिना कोई भारी नुकसान उठाये अपने राज्य को वापस लौट गया था।* कन्नौज की व्यवस्था हाथ में लेने के बाद जैसा कि ह्वेनसांग से मालूम होता है, हर्ष पुनः अपने भाई के हत्यारे (शशांक) से बदला लेने और विभिन्न प्रदेशों की विजय के लिये निकला। ह्वेनसांग से यह भी मालूम होता है कि कन्नौज के आस-पास के प्रदेश भी तब स्वतंत्र थे और उन्हें दबाना भी जरूरी था। अतः हर्ष ने प्रतिज्ञा की कि जब तक वह अपने भाई के शत्रुओं और आस-पास के प्रदेशों को जीत न लेगा वह दाहिने हाथ से भोजन न करेगा।[३४] इस वृत से स्पष्ट है कि गौड़ (बंगाल-कर्णसुवर्ण)

---

* श्री वि. स्मिथ की राय है—"The details of the campaign against Sasanka have not been recorded, and it seems clear that he escaped with little loss".
(Early History of India, p. 339).

३४—"The enemies of my brother are unpunished as yet, the neighbouring countries not brought to submission, while this is so my right hand shall never lift food to my mouth". (Records of Western countries, Book V., vol. I., p. 213).

की ओर बढ़ने से पूर्व हर्ष ने पहले मध्यदेश के प्रदेशों पर प्रभुत्व स्थापित किया और पूरब के शत्रु शशांक की वह इस कार्य को समाप्त करने के बाद ही खबर ले सका। गंजाम में दानसंबंधी तीन ताम्रपत्र प्राप्त हुये हैं जो कोङ्गद (ह्वेनसांग का कोंग-उ-तो=गंजाम) के महासामन्त माधवराज द्वितीय द्वारा प्रेषित किये गये थे। ये दान-पत्र गुप्त-संवत् ३०० अर्थात् ६१६-२० ई० के हैं और उनमें माधवराज को शक्तिशाली महाराजाधिराज शशांक का महासामन्त बतलाया गया है।[३५] अतः प्रकट है कि राज्यवर्धन की हत्या के तेरह वर्ष बाद तक शशांक महाराजाधिराज के रूप में शासन करता रहा; इसलिये स्पष्ट है कि हर्ष उसके राज्य पर ६२० ई० के बाद ही किसी समय अधिकार कर सका होगा। बौद्ध-ग्रन्थ मञ्जुश्रीमूलकल्प के अनुसार हर्ष ने गौड़-राजधानी पुंड्र पर आक्रमण किया और शशांक (सोम) को पराजित कर उसकी शक्ति को कुचल दिया और उसे अपने राज्य की ही सीमाओं में रहने को विवश किया। इस विजय से परितुष्ट होकर हर्ष फिर स्वदेश वापस लौट आया।[३६] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि हर्ष ने पुंड्र के युद्ध में

३५—Epigraphia Indica, vol. VI., pp. 143;

"चतरुदधि सलिल वीची मेखलानिलीनायां सद्वीपागरपत्तनवत्या वसुन्धरायां गौप्ताब्दे वर्षशतत्रेय वर्त्तमाने

महाराजाधिराजाए श्री शशाङ्कराज्ये...."

३६—An Imperial History of India, K. P. Jaiswal, p. 50. "पूर्वदेशं तदा जग्मुः पुण्ड्राख्यं पुरमुत्तमम्।

....७२३ ॥

पराजयामास सोमाख्यं दुष्टकर्मानुचारिणम्।

ततो निषिद्धः सोमाख्यो स्वदेशेनावतिष्ठतः।

....७२५ ॥

शशांक को हराया और दबाया लेकिन पूरी तरह से उसे उन्मूलित नहीं कर सका। यह कार्य शायद वह दूसरी बार के आक्रमण में ही पूरा कर सका होगा।[३७] मञ्जुश्रीमूलकल्प के अनुसार शशांक के शासन-काल के अंत में अशांति और अव्यवस्था पैदा हो गयी थी और गौड़-तंत्र छिन्न-भिन्न हो चला था। उसके मरने पर (तिथी का पता नहीं चलता) उसका लड़का मानव गद्दी पर बैठा जिसने ८ महीने ५ दिन शासन किया और उसके साथ ही फिर गौड़राज्य समाप्त हो गया। श्री बसाक के साथ हमें भी यह प्रतीत होता है कि शायद शशांक के अंतिम दिनों अथवा उसके उत्तराधिकारी के समय में हर्ष ने दुबारा फिर पूर्वी-देश पर आक्रमण किया और कर्णसुवर्ण पर अधिकार कर लिया। श्री बसाक की सम्मति में कर्णसुवर्ण का राज्य जीतने पर हर्ष ने उसे अपने मित्र आसाम

तुष्टकर्मा हकाराख्यो नृपः श्रेयसा चार्थधर्मिणः
७२६ ॥
स्वदेशेनैव प्रयातः यथेष्टगतिनापि वा।
....७२७ ॥

३७—श्री बसाक की सम्मति में गौड की पूर्ण विजय ६१९ और ६३७ ई० के बीच की गई होगी—"It was probably after Sasanka's death (which must have taken place sometime between 619 A. D. and 637 A. D., when yuan Chwang travelled over Magdha and Karna-suvarna) that Harsha could take entire possession of his enemy's kingdom". (History of North-Eastern Iudia, p. 152).

श्री डा० त्रिपाठी गौड-राज्य की पूर्ण विजय ६२० ई० और ६२७ ई० के भीतर अनुमानित करते हैं (History of Kanauj, p. 128).

के राजा को, जिसने संभवतया गौड के अंतिम आक्रमण में उसको सहायता पहुँचायी थी, दे दिया ।[३८]

शशांक को दबाने और उससे प्रतिशोध लेने में हर्ष को यद्यपि काफी समय लगा था, लेकिन उस बीच उसकी दिग्विजय का कार्य चलता ही रहा और अभिषेक के लगभग ६ वर्ष के भीतर उसने अनेक प्रदेशों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था, जैसा कि ह्वेन-सांग के विवरणों से प्रकट होता है। ह्वेन-सांग के अनुसार हर्ष प्रति पाँचवें वर्ष प्रयाग में दान-महोत्सव मनाया करता था। सन् ६४३ ई० में जब ह्वेन-सांग भी हर्ष के साथ प्रयाग-महोत्सव में शामिल हुआ था, तो यह उत्सव छठवीं बार मनाया

३८—"Harsha, after taking possession of the kingdom of his brother's murderer from his own hands at some later date (during Sasanka's life time) or (after Sasanka's death) from those of his un-known successor, might have made it over to Bhaskaravarman. ....If Harsha took possession of Karnasuvarna during Sasanka's life time, he must have done so by his second campaign, with the help of his ally Bhaskaravarman".

(Hist. of North-Eastern India, p. 153).

श्री डा० डी० सी० गांगुली का अनुमान है कि पुंड्र और कर्णसुवर्ण सम्भवतया पहले आसाम के राजा के ही अधीन थे और शशांक ने उन्हें भास्करवर्मन से जीता था (Indian Historical Quarterly, 1936, vol. XII., p. 459) **। यदि यह अनुमान सही हो तो हर्ष ने शायद गौडराज्य पर भास्करवर्मन का पैतृक-अधिकार समझकर ही कर्णसुवर्ण उसे दिया था ।**

जा रहा था। अतः प्रयाग-महोत्सव पहली बार लगभग ६१२ या ६१३ ई० में मनाया गया होगा। हर्ष का प्रयाग में महोत्सव प्रारम्भ करने से प्रकट है कि प्रयाग पर लगभग ६१२ ई० तक उसका अधिकार स्थापित हो चुका था। प्रयाग की विजय इस बात को भी लक्षित करती है कि इस समय के भीतर (६१३ ई०) कन्नौज के आसपास के प्रदेशों से लेकर पूरब में साकेत (अयोध्या) और प्रयाग तक का प्रदेश भी वर्धन-साम्राज्य के अन्तर्गत आ चुके थे। ह्वेन-सांग के शब्दों में हर्ष के शासन-काल के प्रथम ६ वर्ष लगातार युद्ध करते हुये बीते, और जब तक उसने पाँच-गौडों पर अधिकार नहीं कर लिया, तब तक न तो हाथियों के हौदे हटाये गये न सैनिकों की वर्दियाँ बदली गयीं।[३९] पाँच गौडों से अभिप्राय (१) सारस्वत-मण्डल या स्वराष्ट्र (पंजाब और कश्मीर); (२) कान्यकुब्ज (उत्तर - प्रदेश, दक्षिण में नर्मदा तक का प्रदेश); (३) गौड (बंगाल); (४) मिथिला व बिहार; (५) उत्कल (उड़ीसा गंजाम) से है।[४०] किन्तु इन सबकी विजय ६ वर्ष के भीतर नहीं हो सकी थी यह ह्वेन-सांग के विवरण से ही प्रकट है। उदा-

---

३९—"He (Harsha) went from east to west subduing all who were not obedient; the elephants were not unharnassed nor the soldiers unbelted (unhelmeted). After six years he had subdued the five Indies". (Records of western countries; vol. I., p. 213, Watters, vol. I., p. 243).

फैजाबाद जिले में प्राप्त हर्ष के सिक्कों से भी उसका अयोध्या पर आधिपत्य प्रमाणित होता है—J. R. A. S. 1906, pp. 843 to 850.

४०—Harsha, R. K. Mukerji, p. 44. भारतीय इतिहास की भूमिका; श्री राजबली पांडे; पृ० २५८.

हरण के लिये हर्ष बंगाल पर ६२० ई० के बाद और गंजाम पर शासन-काल के अंतिम भाग में ही अधिकार स्थापित कर सका था।

हर्षचरित के अनुसार हर्ष ने सिंध के राजा को दबाया[४१] (प्रमथय) और हिमवाले शैल के प्रदेश (तुषार शैलभुवो) से कर वसूल किया था।[४२] ह्वेन-सांग से मालूम होता है कि उसके पर्यटन के समय सिंध में एक शूद्र-वंशी बौद्धधर्मावलम्बी राजा राज्य कर रहा था। इससे प्रकट है कि सिंध हर्ष के समय एक अलग राज्य के रूप में कायम था। लेकिन यदि बाण के उल्लेख को सही समझा जाय तो उससे इतना ही लक्षित होता है कि सिंध के राजा को किसी युद्ध में पराजित कर हर्ष ने उसकी शक्ति पर रोक लगा दी थी, किंतु उसे उन्मूलित नहीं किया जा सका था।[४३]

४१—Hc. C. T., p. 76.

४२—वही—'अत्र परमेश्वरेण तुषार शैलभुवो दुर्गाया गृहीताः कराः'।

४३—श्री राधाकुमुद मुकर्जी की सम्मति में हर्ष ने सिंध के जिस राजा को दबाया था वह साहसीराय था; Harsha, p. 41. डा० त्रिपाठी का अनुमान है कि "Probably... sometime during his reign Harsha came into collision with the king of Sindh, and it resulted in the defeat of the latter. But the victory was no more than a brilliant conclusion of hostilities, as in the case of Pulakesin II, for we know definitely on the authority of Yuan-Chwang that Sindh continued to be ruled by a king of the sudra caste...." History of Kanauj, p. 114—यह तो सही है कि सिंध के राजा को उखाड़ न फेंका गया था,

बाण के 'तुषार शैल-भू' (हिमशैल-प्रदेश) से कर वसूल करने के उल्लेख से सामान्यतः विद्वान यह अनुमान करते हैं कि उससे अभिप्राय शायद हर्ष की नेपाल-विजय से है।[४४] नेपाल से अर्थ लगाने वालों का

किन्तु उसे हराया गया था इतना तो डा० त्रिपाठी स्वीकार करते ही हैं। हराने के बाद विजयी का सुलह में ऊँचा स्थान रहा होगा इसमें भी संदेह नहीं किया जा सकता। डा० त्रिपाठी का अनुमान है कि शायद इस युद्ध के बाद दोनों दलों की वही स्थिति रही जो हर्ष और पुलकेसिन के संघर्ष के बाद रही। किंतु हमारी सम्मति में सिंध के राजा और हर्ष के बीच की स्थिति दूसरे ही प्रकार की रही होगी। पुलकेसिन ने हर्ष को नर्मदा से आगे बढ़ने से रोका था जिस कारण हर्ष को नर्मदा से प्रत्यागमन करना पड़ा। लेकिन बाण के अनुसार सिंध का राजा पराभूत किया गया था और उसकी राजलक्ष्मी छीन ली गयी थी। हर्ष और पुलकेसिन् दोनों अतुल बल और महान् राज्यों के अधिपति थे किंतु सिंधु-राज और वर्धन-सम्राट के बीच ऐसी कोई समानता न थी। अतः सिंध के राज्य को चालुक्य-राज्य की तरह वर्धन-राज्य की बराबरी में नहीं रखा जा सकता।

४४—श्री आर० के० मुकर्जी—Harsha, p. 30—'from Bana we gather further that Harsa....had taken tribute from an inaccessible land of snowy mountains' (Which may mean Nepal).

श्री के० एम० पानिक्कर भी हर्ष का नेपाल पर आधिपत्य होना मानते हैं—Harsha, pp. 18-20. श्री बुलर (Buhler) और भगवानलाल इन्द्राजी की राय में भी 'तुषार शैल-भु' से अभिप्राय नेपाल से है (Indian Antiquary, vol. XIII., pp. 413-421)।

श्री वि० स्मिथ भी लिखते हैं—"In the latter years of

कहना है कि ह्वेन-सांग द्वारा उल्लेखित नेपाल के राजा अंशुवर्मन (ह्वेन-सांग, जो लगभग ६३७ ई० से ६४३ ई० तक भारत का पर्यटन करता रहा, अंशुवर्मन का उल्लेख 'हाल' (recent king) के राजा के रूप में किया है) के शिलालेखों में दिया संवत् ३४, ३६, ४५ आदि शायद हर्ष द्वारा चलाया (६०६–७ ई०) संवत् है। अंशुवर्मन स्वयं सामन्त अथवा महासामन्त था, इसलिये उसके अभिलेखों का संवत् उसका नहीं हो सकता। नेपाल की वंशावली के अनुसार

---

his reign the sway of Harsha extended over the whole of the basin of the Ganges (including Nepal)". (Early History of India, Third edition, p. 341).

किंतु हर्ष की मृत्यु होने पर जब कन्नौज-राज्य के हरणकर्त्ता अर्जुन और चीनी-दूतमंडल में झगड़ा हुआ तो, वि० स्मिथ कहते हैं कि तिब्बत ने नेपाल के राजा से चीनी दूत-मंडल के नेता को सैनिक सहायता प्रदान करवायी क्योंकि—"Nepal at that time being subject to Tibet", (Ibid, p. 353). चीन और हर्ष के बीच के मैत्रीपूर्ण संबंधों को देखते हुये यह अनुमान करना असंगत होगा कि हर्ष ने यद्यपि नेपाल को अपने अधीन कर लिया था, लेकिन कुछ समय बाद तिब्बत (जो चीन का सामंत-राज्य था) ने नेपाल-प्रदेश हर्ष से छीनकर अपने अधिकार में कर लिया था। यदि ऐसा हुआ होता तो शायद ह्वेनसांग इसका उल्लेख करना न भूलता। इन बातों को देखते हुये वि० स्मिथ की राय अपने में ही एकमत नहीं प्रतीत होती। हर्ष और नेपाल के संबंध में देखिये— (Kielhorn List of Northern Inscriptions, Epigraphia, vol. V., App. p. 75.)

अंशुवर्मन के राज्यारोहण के कुछ ही पूर्व विक्रमादित्य नेपाल आया था और उसने वहाँ अपना संवत् प्रचलित किया। वंशावली के विक्रमादित्य से अभिप्राय शायद हर्ष से ही है, इसलिये अंशुवर्मन का संवत् हर्ष का ही संवत् है। अतः सिद्ध है कि हर्ष ने नेपाल पर चढ़ाई की थी और विजय के बाद वहाँ अपना संवत् भी प्रचलित किया था।

विद्वान लेखक श्री शिलवन लेवी (Sylvain Levi) के अनुसार नेपाल हर्ष के समय तिब्बत के अधीन था। श्री वि. स्मिथ यद्यपि नेपाल का उस काल में तिब्बत का सामन्त-राज्य होना स्वीकार करता है, लेकिन नेपाल को हर्ष का विजित-राज्य भी बतलाता है,[४५] जो कि असंगत है। हमारे मत में अंशुवर्मन के शिलालेखों का संवत्, हर्ष के अलावा कोई दूसरा संवत् भी हो सकता है। वंशावली के विक्रमादित्य को हर्ष से मिलाना भी संगत नहीं प्रतीत होता। इस संबंध में डा० त्रिपाठी के साथ हमारा भी यही कहना है कि वंशावली के आधार पर सही इतिहास का निर्माण करना कठिन है। वंशावली का विक्रमादित्य हर्ष नहीं हो सकता क्योंकि बाण, ह्वेनसांग अथवा हर्ष के अभिलेखों में कहीं भी उसे उक्त उपाधि से अलंकृत नहीं किया गया है।[४६] अतः नेपाल को हर्ष के विजित राज्य में सम्मिलित करना संगत न होगा। एक अन्य विद्वान् तुषार शैलभू को तुखार या तुषार प्रदेश से मिलाता है।[४७]

४५—Early History of India, V. A. Smith, pp. 341 & 353.

४६—History of Kanauj, pp. 92 to 98.

४७—Harshavardhana, by Ettinghausen, p. 47. डा० त्रिपाठी का अनुमान है कि "Atra paramesvarena tusara Saillbhuvo Durgaya grihitah Karah" might also mean...."Here the supereme lord has obtained the

हमारे अनुमान में हर्षचरित के तुषार-शैल-भू से अभिप्राय कश्मीर से हो सकता है। लाइफ (The Life of Hiuen-Tsiang) में उल्लेख है कि कश्मीर के भिक्षुसंघ के पास बुद्ध के दाँत का एक अवशेष था। हर्ष-शीलादित्य उस पवित्र दाँत को देखने और पूजने की इच्छा से सीमांत पर पहुँचा और कश्मीर के राजा से इसकी अनुमति चाही। भिक्षुओं के संघ ने दाँत को छिपा दिया, लेकिन कश्मीर के राजा ने शीलादित्य की शक्ति से आतंकित होकर स्वयं दंतावशेष को खोज निकाला और उसे हर्ष को समर्पित कर दिया। शीलादित्य दंत-अवशेष को देखकर अभिभूत हो उठा और बलप्रयोग करके वह उस अवशेष को अपने साथ ले आया।[४८]

पश्चिम की ओर हर्ष ने वल्लभी के राजा ध्रुवसेन द्वितीय (ह्वेनसांग का ध्रुवपट्ट या ध्रुवभट्ट) को पराजित किया जैसा कि दद्द द्वितीय के नासुरी अभिलेख से पता चलता है। नासुरी अभिलेख के अनुसार हर्षदेव से पराजित होने पर वल्लभी के राजा ने भड़ौच के गुर्जर-राजा दद्द द्वितीय

---

hand of Durga born in the snow mountains", which in all probability alludes to Harsa's marriage with some hill-princess belonging to a very powerful family (History of Kanauj, p. 98).

४८—"Siladitya seeing it (tooth of Buddha) was overpowered with reverence, and exercising force, carried it off to pay it relegious offerings"—(The Life of Hiuen-Tsiang, by Beal, p. 183). देखिये—An Advanced History of India, edited by, R. C. Majumdar etc, pp. 158-159.

के यहाँ शरण ली थी।[४९] लगभग ६४१ ई० में ह्वेनसांग ने पश्चिमी भारत का पर्यटन किया था। वल्लभी का वर्णन करते हुये चीनी-यात्री ने लिखा है कि वहाँ का राजा ध्रुवभट्ट (या पट्ट) क्षत्रिय जाति का है और कन्नौज के महाराज शीलादित्य का दामाद है।[५०] नासुर अभिलेख और ह्वेनसांग के उल्लेख से मालूम होता है कि हर्ष से पराजित होकर वल्लभी के राजा ने भागकर पहले दद्द के यहाँ शरण ली; लेकिन बाद में वल्लभी-राज ने आत्मसमर्पण कर हर्ष की अधीनता स्वीकार कर ली।[५१] शायद उसके

४९--Indian Antiquary, XII, pp. 77-79.—The Illustrious Dadda, whose pure mind was not agitated by the treaks of the mighty Kali age,.... whom, with the grace of a white cloud, there hung ceaselessly a canopy of glory gained by protecting the lord of Valabhi, who had been defeated by the great lord the illustrious Harsadeva".

५०--Records of western countries, Book XI, vol. II., Beal, p. 267.

५१—डा० त्रिपाठी के अनुमान में ध्रुवसेन द्वितीय ने अपने भुजबल से पुनः स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी और इसलिये "....his previous defeat, referred to in the Nausari Inscription was no proof of feudatory rank".

डा० आर० सी० मजुमदार के आधार पर डा० त्रिपाठी यह समझते हैं कि हर्ष से आतंकित होकर वल्लभी और भड़ौंच आदि राज्यों ने पुलकेसिन से मिलकर कन्नौज के विरुद्ध एक संगठित मोर्चा कायम किया था, जिसके परिणामस्वरूप हर्ष पूर्णरूप से पराभूत किया जा सका। डा० त्रिपाठी आगे कहते हैं कि इस संगठित मोर्चे से डरकर ही—

आत्मसमर्पण से प्रसन्न होकर ही हर्ष ने बाद में ध्रुवभट्ट से अपनी बेटी का विवाह कर उसे अपना संबंधी भी बना लिया था। राजनैतिक दृष्टि से यह विवाह बहुत लाभप्रद था, क्योंकि दक्षिण की ओर बढ़ने में तथा दक्षिण की चालुक्य-शक्ति का उत्तरी-बढ़ाव रोकने में वल्लभी कन्नौज को काफी सहायता

"Harsa gave way against these tremendous odds, and a treaty was arranged, stipulating the restoration of Dhurvabhata II, who (perhaps as a mark of the termination of hostilities) further accepted the hand of Harsa's daughter. This matrimonial arrangement....procured for Harsa the alliance of his quondam foe, who could henceforth be relied upon to restrain the northern ambitions (if any) of his great southern neighbour Pulakesi II".

(Hist. of Kanauj, pp. 110-111).

डा० त्रिपाठी के उपरोक्त विवरण से प्रकट होता है कि पुलकेसिन् से युद्ध होने से पूर्व हर्ष वल्लभी के राजा को हरा चुका था। अतः वल्लभी और भड़ौंच के राजाओं ने डरकर पुलकेसिन् की शरण ली और उससे मिलकर कन्नौज के विरुद्ध एक संघ बनाया। हर्ष को नर्मदा पर इसी संघ ने पराभूत किया था। इसी संघ के भय से विजयी होने पर भी हर्ष को ध्रुवसेन द्वितीय का राज्य उसे लौटा देना पड़ा और अपनी बेटी भी उसे विवाह देनी पड़ी। लेकिन जब बातें इस प्रकार की थीं तब यह समझ में नहीं आता कि दामाद बनने पर ध्रुवसेन किस प्रकार बिना खतरे के पुलकेसिन् का पक्ष छोड़कर उसी के उत्तरी-बढ़ाव को रोकने में हर्ष का मददगार बन सकता था ? क्या उसे तब अपने प्रबल रक्षक का भय नहीं रह गया था।

श्री के० एम० पानिक्कर का अनुमान है—"Harsha attacked

पहुँचा सकता था। वल्लभी के अधीन होने से उसके अधीनस्थ अन्य प्रदेशों (आनन्दपुर-सौराष्ट्र अथवा सोरठ) पर भी कन्नौज का प्रभुत्व स्थापित हो गया होगा इसमें संदेह नहीं किया जा सकता ।[५२]

---

and defeated the....Vallabhi king in 636. ....The defeated king fled to Dadda of Broach. Partly through the intervention of that king and partly because Harsha wanted to safeguard his line of communication in his campaign against the Chalukya monarch the Vallabhi king was generously treated. He was reinstated....and Harsha gave him his danghter in marriage. It was after this that Harsha attacked Pulakesin". (Shri Harsha of Kanauj, p. 24).

पुलकेसिन् के विरुद्ध वल्लभी-राज से मार्ग आदि के लिये सहयोग प्राप्त करने के लिये ध्रुवसेन द्वितीय से उदारता का व्यवहार किया जाना तो संगत प्रतीत होता है; लेकिन वल्लभी पर आक्रमण की जो तिथी (६३६ ई०) अनुमानित की गयी है वह सही नहीं मालूम होती । श्री पानिक्कर के अनुसार वल्लभी से सुलह होने के बाद ही हर्ष का पुलकेसिन् से युद्ध हुआ था । ऐहोल अभिलेख के अनुसार हर्ष और चालुक्य राज के बीच हुये युद्ध की तिथी ६३४ ई० के पूर्व ही कभी रखी जा सकती है । अनुमानतः यह तिथी ६२५ और ६३४ के बीच मानी जा सकती है । इस आधार पर वल्लभी के साथ का युद्ध ६२५ या उससे कुछ पूर्व हुआ होगा ।

५२—Records of Western countries, vol. II, Beal, pp. 268-269; Early History of India, IIIrd edition; V. A. Smith, p. 340.

उत्तरी-भारत के एक बहुत बड़े भाग पर प्रभुत्व स्थापित करने के बाद, प्राचीन दिग्विजेता मौर्य चन्द्रगुप्त और अश्वमेध पराक्रमांक समुद्र-गुप्त का अनुसरण करते हुये हर्ष ने भी दक्षिणापथ की विजय का प्रयत्न किया। लेकिन मौर्य और गुप्त दिग्विजेताओं की तरह दक्षिण की विजय में वर्धन-विजेता को सफलता न मिल सकी। हर्ष एक विशाल सेना लेकर दक्षिण की ओर बढ़ा, लेकिन दक्षिणापथ के शक्तिशाली चालुक्य-राजा पुलकेसिन द्वितीय ने वर्धन-सेना को नर्मदा से आगे बढ़ने से रोक दिया। परिणामतः हर्ष की दक्षिण-विजय की लालसा अधूरी ही रह गयी। पुलकेसिन द्वितीय को दक्षिणापथेश्वर कहा जाता है। उसके समय में चालुक्य-साम्राज्य विंध्याचल से लेकर दक्षिण में चोल, कैरल और पांड-राज्य तक विस्तृत था। ऐहोल अभिलेख के अनुसार पुलकेसिन ने लाट, मालव और गुर्जरों को दबाया और उन्हें सामंतों का आचरण सिखलाया। पूरब में कलिंगों और कोसलों को दबाकर वह दक्षिण में घुसा और पिष्ठपुर व कांची के राजाओं को हराता हुआ कावेरी को पार कर चोलों के राज्य में जा घुसा। उसने अपरिमित विभूति से स्फीत, अनेक सामंतों और सेना से युक्त हर्ष के हर्ष को विगलित किया अथवा मिटा दिया। ऐहोल अभिलेख की तिथी ५५६ शक संवत् अथवा ६३४—३५ ई० सन् है। युद्ध कहाँ पर और कब हुआ था इसका स्पष्ट पता नहीं चलता। अनुमानतः यह युद्ध ऐहोल लेख की तिथी से कुछ समय पूर्व रेवा अथवा नर्मदा के तट पर लड़ा गया था।[५३] लाइफ और रेकर्ड्स में भी हर्ष के इस असफल युद्ध का उल्लेख किया गया है।[५४] वि० स्मिथ ने इस युद्ध की तिथी अनुमानतः ६२० ई०

५३—Epigraphia Indica, vol. VI, pp. 1ff : Dynasties of the kanarese Districts; fleet, p. 35.

५४—Life, Book IV., p. 147—"Siladitya-raja boasting of his skill and the invariable success of

में रखी है।[५५] श्री पानिक्कर के अनुसार यह युद्ध वल्लभी-राज की विजय के बाद ६३६ ई० सन् में हुआ होगा।[५६] हर्ष की पराजय का उल्लेख करनेवाला ऐहोल लेख की तिथि जब ६३४–३५ ई० है तो श्री पानिक्कर कैसे इस तिथि के बाद युद्ध की तिथि रखे हैं। युद्ध की तिथि ६३४ ई० अथवा उसके कुछ पूर्व ही रखी जा सकती है। यद्यपि कोई एक निश्चित तिथि का अनुमान करना तो प्रमाणों के अभाव में संभव नहीं है लेकिन यह कहा जा सकता है कि युद्ध ६२० ई० और ६३४ ई० के बीच हुआ होगा।[५७] इस विजय ने पुलकेसिन् की कीर्ति को बढ़ाया और फलतः उत्तरापथेश्वर का विजेता होने पर उसने 'परमेश्वर' की उपाधि से अपने को अलंकृत किया। चालुक्य-राज की यह विजय निःसन्देह बहुत महत्वपूर्ण थी, यही कारण है कि बहुत से चालुक्य-लेखों में हर्ष की पराजय का उल्लेख किया गया है।[५८]

---

his generals, filled with confidence himself, marched at the head of his troops to contend with this prince—but he was unable to prevail or subjugate him (chalukya king Pulakesi)". Records of western countries. Book XI, pp. 256-257.

५५—Early History of India, IIIrd ed., p. 340.

५६—Shri Harsha of Kanauj, p. 84.

५७—डा० त्रिपाठी इस युद्ध की तिथि अनुमानतः ६३० ई० के आसपास रखते हैं। अन्य विद्वानों की सम्मति के लिये देखिये—History of Mediæval Hindu India, vol. I., p. 13, by C. V. Vaidya. Ancient History of the Deccan (english trsns.), p. 113, by Prof. S. Dubreuil.

५८—Epigraphia Indica, vol. V., Inscriptions

ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष का अंतिम आक्रमण कोंग-उ-तो अथवा कोनयोध (Kong-u-t'o or Konyodha) पर हुआ ।[५९] कोनयोध अथवा कोङ्गद या कोंणगोद उड़ीसा का दक्षिणी भाग था, जिसे श्री कनिंघाम ने गंजाम से मिलाया है ।[६०] यह आक्रमण लगभग ६४२-६४३ में हुआ था । कोंणगोद में तब शिलोद्भव वंश के राजा राज्य करते थे । शशांक के समय कोंणगोद के राजा गौड के अधीन सामंत अथवा महासामंत थे । शशांक के समय कोंणगोद का महासामंत माधवराज द्वितीय था जिसकी अंतिम तिथि ६१० ई० तक अनुमानित की गयी है । उसका उत्तराधिकारी संभवतया यशोभीत द्वितीय था । अत: जिस समय हर्ष का कोंणगोद पर आक्रमण हुआ उस समय शायद यशोभीत वहाँ राज्य करता था । लाइफ के अनुसार कोंणगोद को दबाने के बाद हर्ष लौटती वेर कुछ दिन उड़ीसा में ठहरा । कोंणगोद के राजा को पराजित करने के बाद शायद उससे केवल अधीनता स्वीकार करायी गयी और उसे आंतरिक शासन के लिये स्वतंत्र छोड़ दिया गया । यही कारण है कि कोंणगोद के शिलोद्भव राजा आठवीं शती के मध्यतक वहाँ राज्य

---

nos. 401-404. Indian Antiquary VI., p. 87, vol. VIII., p. 244; vol. IX, p. 125 and vol. XIII.

५९—Records, vol. II., Book X., p. 206; Life, Book IV., p. 159.

६०—श्री कनिंघाम के अनुसार गंजाम तब उड़ीसा का ही एक अंग था (Records, vol. II., p. 206 fn. 57). श्री फरगुसन के अनुसार कोंग-उ-तो राज्य की सीमा 'कटक से असक' (गंजाम जिले में) तक थी –(Epigraphia Indica, vol. VI., p. 137). History of North-Eastern India, R. G. Basak, pp. 158-159.

करते ही रहे।[६१] किंतु उड़ीसा का प्रान्त कन्नौज-साम्राज्य में मिला लिया गया था, जैसा कि लाइफ में दिये गये विवरण से प्रतीत होता है। लाइफ के अनुसार शीलादित्य राजा ने उड़ीसा के प्रसिद्ध बौद्ध-पंडित जयसेन को वहाँ के अस्सी बड़े नगरों का राजस्व देना चाहा लेकिन त्यागमूर्ति बौद्धाचार्य ने उसे लेना स्वीकार नहीं किया।[६२]

ह्वेनसांग के रेकर्डस् (विवरणों) और लाइफ से मालूम होता है कि कोंणगोद की विजय से पूर्व ६४०-४१ ई० तक हर्ष ने मगध को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया था। हर्ष ने ६४१ ई० में चीन के सम्राट् के पास अपना राजदूत भेजा था और तद्नन्तर शीघ्र ही फिर दूसरा राजदूत भी चीन भेजा गया। पहले राजदूत के साथ जो पत्रादि चीन को भेजे गये थे उसमें हर्ष को 'मगध का सम्राट्' कहा गया है।[६३] लाइफ के अनुसार शीलादित्य-राजा ने नालन्द के पास सौ फीट ऊँचा एक सुप्रसिद्ध विहार का भी निर्माण करवाया जो बाहर से पीतल की चादरों से मंडित था।[६४] नालन्द में हर्ष की मुहरें (Seals) भी प्राप्त हुई है। ये सब वृत्त हर्ष का मगधपर आधिपत्य प्रमाणित करते हैं*। ह्वेनसांग के अनुसार शशांक के समय में पूर्णवर्मा मगध के सिंहासन पर था।

६१—History of North-Eastern India, p. 179.

६२—लाइफ के विवरण से प्रकट है कि उड़ीसा पूर्णवर्मा के समय भी मगध राज्य का अंग था; अतः अनुमान किया जा सकता है कि पूर्णवर्मा के बाद जब हर्ष ने मगध पर अधिकार किया था तभी उड़ीसा भी उसके अधिकार में चला आया था (लगभग ६४१ ई० के आसपास) (The Life of Hiuen-Tsiang, pp. 153-154)।

६३—Watters, vol. I., p. 351.

६४—Life, p. 189.

*—Epigraphia Indica, vol. XXI, pp. 74-76.

अतः वह लिखता है कि जब शशांक ने बोधि-वृक्ष को काटकर गिराया तो कुछ समय बाद पूर्णवर्मा ने बड़े प्रयत्न से उस पवित्र-वृक्ष को फिर से जीवित कर दिया। इस पूर्णवर्मा को ह्वेनसांग ने अशोक का अंतिम वंशज कहा है। संभवतया पूर्णवर्मा अथवा उसके किसी उत्तराधिकारी को पदच्युत करके ही हर्ष ने मगध व उड़ीसा पर अधिकार किया था।[६५]

हर्ष की दिग्विजय के परिणामस्वरूप उत्तरी-भारत का बहुत बड़ा भाग वर्धन-साम्राज्य के अंतर्भूत चला आया था, जिस कारण उसे चालुक्य अभिलेखों में 'सकलोत्तरापथेश्वर' कहा गया है और बाण ने उसे 'परमेश्वर', 'महाराजाधिराज', 'पुरुषोत्तम' तथा सलकराज-चक्र-चूड़ामणि आदि उपाधियों से अलंकृत किया है।[६६] बाण और ह्वेनसांग के विवरण, हर्ष की दिग्विजय तथा उसके अभिलेखों व सिक्कों आदि के आधार पर वर्धन-साम्राज्य की सीमाएँ इस प्रकार निर्धारित की जा सकती हैं—पूर्वी-पंजाब का कुछ भाग, कुलुतप्रदेश, सरहिन्द, थानेश्वर (अंबाला जिला) इन्द्रप्रस्थ और उसके आसपास का प्रदेश; लगभग समस्त उत्तर-प्रदेश (मथुरा, और मातिपुर को छोड़कर);[६७]—पूरब की तरफ

६५—Records II., Book VIII., pp. 117-118. Watters II., p. 115.

६६—Hc. C & T., p. 40, 75. Indian Antiquary, vol. VI, p. 85. History of Kanauj, p. 82.

६७—जालंधर के बाद ह्वेनसांग कुलुतो और तब सी-तो-तु-लु (She-to-t'u-lu=शतद्रु-प्रदेश) में पहुँचा था। इन दोनों जगह की राजनैतिक स्थिति और वहाँ के शासकों के संबंध में ह्वेनसांग ने कुछ नहीं लिखा है, जिससे यह प्रतीत होता है कि ये प्रदेश सीधे हर्ष के विजित राज्य में थे। कुलुतो अथवा कुलुत को व्यास की ऊपरी घाटी में कुलुत-प्रदेश से मिलाया गया है (Ancient Geography of India,

मिथिला व विहार, गौड़ व बंगाल (कर्णसुवर्ण को छोड़कर, लगभग समस्त बंगाल), पुंड्रवर्धन (काजंगल अथवा राजमहल), समाताता और ताम्रलिप्ति[६८]—तथा उड़ीसा (उन्तु अथवा ओद्र); पश्चिम में

---

by Cunningham, p. 163). यह प्रदेश चारों ओर पहाड़ों से घिरा था और हिम-शैल के निकट था। अतः प्रकट है कि वर्धन-साम्राज्य की सीमा व्यास की ऊपरी-घाटी में हिमालय तक विस्तृत थी। इसकी पुरानी राजधानी नगरकोट (वर्त्तमान सुलतानपुर) थी (Record, vol. I, p. 177 fn. 131)। शतद्रु-प्रदेश अथवा सतलज नदी का प्रदेश; इसकी राजधानी संभवतया वर्तमान सरहिन्द में थी (Ancient Geography of India, p. 166. Records, Ibid, p. 178 fn. 34)।

मथुरा का वर्णन करते हुये चीनी-यात्री ने लिखा है कि वहाँ का राजा और बड़े मंत्री धार्मिक कार्यों में बड़े उत्साह से भाग लेते हैं। प्रकट है कि मथुरा एक अलग राज्य के रूप में था। वर्धन-साम्राज्य से घिरे होने से यह अनुमान किया जा सकता है कि शायद यह राज्य हर्ष के प्रभाव-क्षेत्र में एक अर्द्ध-स्वतन्त्र सामन्त राज्य जैसा था (Records, vol. I, p. 181)।

मातिपुर में ह्वेनसांग के समय एक शूद्र-वंशी राजा राज्य करता था (Ibid, p. 190)। मातिपुर संभवतया पश्चिमी रुहेलखंड में बिजनौर के पास स्थित मंडावर नगर है (Ibid, fn. 77, Ancient Geographiy of India, p. 349)।

गढ़वाल और जौनसार का प्रदेश हर्ष के राज्य में थे, जिससे यह अनुमान होता है कि मंडावर राज्य भी हर्ष के प्रभाव-क्षेत्र के अंतर्गत था।

६८—पहले उल्लेख किया जा चुका है कि कर्णसुवर्ण हर्ष ने जीतने के बाद कामरूप के राजा को दे दिया था। निधानपुर अभिलेख में

वल्लभी की सीमा तक (मध्य-भारत में जभौती अथवा बुंदेलखंड। माहेश्वरपुर (ग्वालियर) और मालवा में उज्जैन का प्रदेस राज्य के अंतर्गत न थे);[६९]—उत्तर में हिमालय[७०] से रेवा अथवा नर्मदा तक।

भास्करवर्मन का विजेता के रूप में कर्णसुवर्ण में प्रवेश करने का उल्लेख है (Epigraphia Indica, vol. XII, p. 66)।

डा० त्रिपाठी के अनुमान में हर्ष द्वारा कर्णसुवर्ण का जैसा उपजाऊ प्रदेश यों ही कामरूप को देना संभाव्य नहीं प्रतीत होता। उनके अनुमान में—"This must have happened after the tumult following Aruna's usurpation and Bhasakara's siding with Wang-hiuen-tse". (History of Kanauj, p. 103).

इस मत के विरुद्ध देखिये—History of North-East. India; Basak, p. 153. Shri Harsha of Kanauj, K. M. Panikkar, p. 17. Harsha, Mukerji, p. 43.

६९—जभौती (ची-कि-तो) में एक ब्राह्मणवंशी राजा राज्य करता था (Watters, II, p. 25. Records, vol. II, p. 271)। वर्धन-साम्राज्य से घिरा होने के कारण यह राज्य प्रभाव-क्षेत्र का राज्य माना जा सकता है।

माहेश्वरपुर, वॉटरस् के अनुसार चम्बल और सिन्धु के बीच ग्वालियर का प्रदेश है। यहाँ का राजा भी ब्राह्मण था (Watters II, p. 251, See also map at the end)। उज्जैन में भी ब्राह्मण राजा राज्य करता था (Ibid)। माहेश्वरपुर और उज्जैन के राजा भी शायद सामन्त राजा थे।

७०—हिमालय के एक-तरफ वर्धन-सीमा व्यास की ऊपरी घाटी में कुल्लु अथवा कुलत के पहाड़ी प्रदेश तक गयी थी और दूसरी तरफ सुवर्णगोत्र के प्रदेश को छोड़कर, मायापुर (हरिद्वार), ब्रह्मपुर

इस विजित-राज के अलावा कुछ राज्य ऐसे थे जिन्हें हर्ष के प्रभाव-क्षेत्र के अंतर्गत गिना जायगा। इन राज्यों के राजा हर्ष का प्रभुत्व तो मानते थे, लेकिन आंतरिक शासन में वे स्वतंत्र थे। इन राज्यों में मुख्यतः ये थे—सिंध, कश्मीर और उसके अधीनस्थ राज्य, जालंधर, वल्लभी और उसके अधीनस्थ राज्य तथा कामरूप। सिंध, कश्मीर, कामरूप और वल्लभी के राज्यों का हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। लाइफ के अनुसार ह्वेनसांग ने जब हर्ष से वापसी यात्रा के लिये विदा ली थी तो चीनी-यात्री को सीमांत तक पहुँचाने का कार्यभार वर्धन-सम्राट् ने जालंधर के राजा उदितो अथवा उदित-राज को सौंपा था।[७१] कुमार-राज (कामरूप) और ध्रुवभट्ट (वल्लभी) को अपने

(ब्रिटिश यूनियन अब गढ़वाल) और श्रुघ्न (जौनसार में कालसी) का प्रदेश हर्ष के राज्य के अन्तर्गत थे। इन स्थानों की राजनैतिक स्थिति तथा वहाँ के राजाओं के सम्बन्ध में ह्वेनसांग मौन है जिससे यह अनुमान होता है कि ये प्रदेश हर्ष के विजित राज्य में थे (Records,, vol. I, pp. 186, fn. 64; p. 197, fn. 98; p. 198, fn. 100)।

सुवर्णगोत्र का प्रदेश गढ़वाल के उत्तर हिम से ढँके पहाड़ों में स्थित था। यह देश बढ़िया सोने की ऊपज के लिये प्रसिद्ध था। इस प्रदेश का शासन मुख्यतः रानी द्वारा होता था जिस कारण यह प्रदेश स्त्री-राज्य के नाम से भी प्रसिद्ध था (Records, vol. I, p. 199)।

७१—"As for his books and images, the Master confided them to the military escort of a king of North India called Udhita, ...the advance being slow king Siladitya afterwards attached to the escort of Udhita-raja a great elephant, with 3000 gold pieces and 10,000 silver pieces, for defraying the

साथ लेकर हर्ष भी स्वयं कुछ दूर तक ह्वेनसांग को विदा देने गया था।[७२] हर्ष ने ता-क्वान (पथ-प्रदर्शक) अथवा महातार नाम के चार अधिकारी भी चीनी-यात्री को पहुँचाने वाले दल के साथ भेजे थे। इन अधिकारियों को हर्ष ने सीमांत राज्यों के लिये कुछ पत्र भी लिखकर दिये थे[७३] ताकि मार्ग में पड़ने वाले राजा भी ह्वेनसांग को चीन तक पहुँचने में सुविधाएँ प्रदान करते रहें। लाइफ के अनुसार कश्मीर और कपिसा के राजाओं ने भी चीनी-यात्री का अपने राज्य में पहुँचने पर बहुत आदर-सत्कार किया था। कपिसा का राजा ह्वेनसांग को अपने राज्य के सीमांत तक पहुँचाने भी गया था। विदा लेते समय कपिसा के राजा ने आगे की यात्रा के लिये तमाम उपयोगी वस्तुएँ भेंट कीं और सुरक्षा के लिये सौ आदमियों का एक दल भी ह्वेनसांग के साथ किया।[७४] बौद्ध होने के नाते कपिसा और कश्मीर के राजाओं का यद्यपि ह्वेनसांग के साथ सद्व्यवहार करना स्वाभाविक था; तथापि यह भी अनुमान किया जा सकता है कि हर्ष के पत्रों ने भी उन्हें ऐसा करने के लिये प्रेरित किया था। निःसंदेह, उत्तरी भारत का सर्वशक्तिशाली राजा होने से ही

Master's expenses on the road". (The Life of Hiuen-Tsiang, p. 189. Records, vol. I, pp. 175-176).

७२—Life, p. 189—"Three days after separation the king, in Company with Kumar-raja and Dhruvabatta-raja, took several hundred light horsemen and again came to accompany him (Hiuen-Tsiang) for a time and to take final leave, so kindly disposed were the kings to the Master".

७३—Ibid, pp. 189-190.

७४—Ibid, pp. 193-194.

हर्ष ने अपने सीमांत के बाहरी राजाओं को निर्देशात्मक पत्र लिखे थे जिनका सभी जगह आदर-सहित पालन किया गया।

अतः हर्ष का विजित अथवा गृह-राज्य यद्यपि सकल-उत्तरी-भारत को घेरे नहीं था, तथापि उसका प्रभाव-क्षेत्र उत्तर में कपिसा, और कश्मीर, पश्चिम में सिंध और वल्लभी, पूरब में कामरूप और दक्षिण पूरब में कोंणगोद (गंजाम) तक विस्थापित था। प्रभाव-क्षेत्र के राज्यों के अलावा सामंत-राज्यों की संख्या भी कम न थी। हर्षचरित और ह्वेनसांग के विवरणों से हर्ष के अधीनस्थ सामंतों का अंदाजा लगाया जा सकता है। हर्षचरित में यद्यपि सामंतों की निश्चित संख्या नहीं दी गयी है लेकिन लाइफ और रेकर्डस् से मालूम होता है कि हर्ष के सामंतों की संख्या १८ अथवा २० थी। ये सामंत-राज्य संभवतया वर्धन-राज्य के अंतर्गत पड़ने वाले राज्य रहे होंगे। इनमें से कुछ का हम पीछे फूट-नोट में उल्लेख कर चुके हैं। अंत में, हर्ष के सामंतों की संख्या तथा उसके प्रभाव-क्षेत्र के विस्तार को देखते हुये स्वीकार किया जा सकता है कि वह 'सकलोत्तरापथनाथ' और 'सकलराज-चक्र-चूड़ा-मणि' के नाम से ठीक ही अलंकृत किया गया है।[७५]

७५—हर्ष का 'सकलोत्तरापथ' होने के सम्बन्ध में कुछ सम्मतियाँ—हर्ष, श्री आर. के. मुकर्जी. पृष्ठ ४३—"....The mere size of the territory directly governed by Harsa would not be at all a correct measure of his true political position and achievements, the sphere of his influence. With all the possible reservations, it can not be doubted that Harsa achieved the proud position of being the paramount soverign of the whole of Northern India. That the Indian public opinion of the times held

अध्याय ३

साम्राज्य का शासन

पुष्यभूतियों का सीमित-राज्य हर्ष की दिग्विजय के परिणामस्वरूप उत्तरी-भारत का मुख्य राज्य बन गया था। राज्य के विस्तार और प्रसार के साथ उसके सीमांतों की सुरक्षा, आंतरिक व्यवस्था और शांति की समस्या भी अब बढ़ गयी थी। बाहरी आक्रमणों और आंतरिक विद्रोहों को दबाने तथा शांति बनाये रखने के लिये एक शक्तिशाली

---

this view is clear from the description of Harsa as 'the Lord of the whole Uttrapatha' in even the South Indian inscriptions".

श्री पानिकर—"Harsha seems to have brought the whole of Northern India under his control". (Shri Harsha of Kanauj, p. 22 and p. 26).

श्री वि. स्मिथ—"In the latter years of his reign the sway of Harsha extended over the whole of the basin of the Ganges (including Nepal), from the Himalayas to the Narmada, besides Malwa, Gujarat, and Saurashtra, was undisputed. Detailed administration of course remained in the hands of the local Rajas, but even the king of distant Assam (Kamrupa) in the east obeyed the orders of the suzerain, whose Son-in-law, the king of Valabhi in

स्थित-सेना की अत्यंत आवश्यकता पैदा हो गयी थी।[1] अतः ह्वेनसांग लिखता है—कि '६ वर्ष के निरंतर युद्धों के बाद हर्ष ने पाँच गौड़ों (five Indies) पर अधिकार स्थापित किया और इस प्रकार राज्य का विस्तार करने पर उसने सेना की संख्या बढ़ा दी। हाथियों की

---

the extreme west, attended in the imperial train". (Early History of India, IIIrd edi., p. 341).

श्री डा० राजबली पांडे—"मोटे तौर पर हर्ष के साम्राज्य का विस्तार उत्तर में कश्मीर और नेपाल से लेकर दक्षिण में नर्मदा और महेन्द्र पर्वत (उड़ीसा में) तक और पश्चिम में सुराष्ट्र से लेकर पूर्व में प्राग्-ज्योतिष (आसाम) तक था। सारा आर्यावर्त उसके अधीन था और वास्तव में वह 'सकलोत्तरापथनाथ' (सम्पूर्ण उत्तर-भारत का अधिपति) था (भारतीय इतिहास की भूमिका, पृष्ठ २५९)।

१—हूणों का भय शायद इस समय भी बना हुआ था। राज्यवर्धन जब हूणों को दबाने (६०५ ई०) भेजा गया था तो अभियान की कुछ मंजिलों तक हर्ष भी साथ गया था। लेकिन हर्ष के समय हूणों की चेष्टा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। शायद हर्ष के प्रभाव और उसकी दृढ़-सीमांत नीति के फलस्वरूप हूणों को उसके समय में उत्पात मचाने का साहस नहीं हो सका था। हूणों के अलावा पड़ोसी स्वतन्त्र राज्यों से भी आक्रमण का भय हो सकता था। अतः ऐसे राज्यों तथा अन्दर के सामन्त राज्यों को दबाये रखने के लिये भी शक्तिशाली वाहिनी आवश्यक थी। वॉट्सं ने ठीक ही लिखा है कि—"When his wars were over Siladitya, proceeded to put his army on a peace footing, that is, to raise it to such a force that he could overawe any of the neighbouring states disposed to be contumacious". (Watter's, vol. I, p. 346).

संख्या ६०,००० और घुड़सवारों की संख्या एक लाख तक पहुँचा दी गयी। इसके बाद बिना युद्ध लड़े उसने, तीस वर्ष तक शांति के साथ शासन किया'[२]। ह्वेनसांग का यह कहना कि प्रथम ६ वर्षों के बाद हर्ष को फिर कोई युद्ध न करना पड़ा था शब्दशः सही नहीं है। लाइफ के अनुसार कोंणगोद पर हर्ष ने अपने शासन के अंतिम भाग में ही चढ़ाई की थी। शशांक को ६१६ ई० के बाद ही दबाया जा सका था। पुलकेसिन् और वल्लभी के साथ भी शासन-काल के उत्तरार्द्ध में ही युद्ध हुये थे।

हर्षचरित और बाण दोनों से मालूम होता है कि हर्ष की सेना में 'रथ' नहीं थे। लेकिन भारतीय-सेना के सामान्य स्वरूप का वर्णन करते हुये ह्वेनसांग ने रथ-सेना का भी उल्लेख किया है।[3] इससे अनुमान होता है कि रथों का प्रचलन बिल्कुल बंद नहीं हो गया था और कतिपय भारतीय प्रदेशों के राजा 'रथों' को भी सेना में स्थान दिये हुये थे। दूर के युद्धों के लिये 'रथ' अनुपयोगी थे, इसलिये हर्ष ने शायद अपनी सेना से इन्हें हटा दिया था। हर्षचरित के अनुसार हर्ष की सेना में शायद 'ऊँटों की सेना' भी शामिल थी।[४]

सेना का मुख्य कार्य, ह्वेनसांग लिखता है—सीमांतों की रक्षा करना तथा विद्रोहियों को दबाना था। रात्रि में राजप्रासाद की सुरक्षा के लिये भी सैनिक तैनात किये जाते थे।[५] ह्वेनसांग के अनुसार सैनिक-कर्म पैतृक था, और राष्ट्रीय रक्षक-सेना अथवा स्थित-सेना में सधे वीर-

---

२—Watters, vol. I, p. 343. Records, vol. I, p. 213.

३—Watters, vol. I, p. 171—'The army is composed of foot, Horse, chariot, and Elephant soldiers'.

४—Hc. C & T., p. 46.

५—Records, Beal, I, p. 87.

योद्धा भर्ती किये जाते थे। शांति के समय वे राजप्रासाद की रक्षा में नियुक्त रहते थे और युद्ध के समय वे सबसे आगे अभियान का नेतृत्व करते थे।[६]

हर्षचरित और अभिलेखों से हर्ष के समय के उच्च सैनिक अधिकारियों के नाम भी प्राप्त होते हैं; जैसे—महासेनापति; सेनापति; महाबलाधिकृत, और बलाधिकृत। सेना का सबसे ऊँचा अधिकारी 'संधि और युद्ध का मंत्री' था जिसे 'महासन्धि-विग्रहाधिकृत' कहते थे; उसके नीचे संधिविग्रहिक होता था। हर्षचरित में महासंधिविग्रहिक का नाम 'अवन्ति' मिलता है। अभियान के समय सैन्य-संचालन करने वाला मुख्य अधिकारी 'महाबलाधिकृत' कहलाता था और उसके नीचे 'बलाधिकृत' होता था। सेना का मुख्य सेनानी 'महासेनापति' और उसके नीचे सेनापति होता था। हर्षचरित में 'सिंहनाद' को सेनापति कहा गया है।

अश्व सेना के मुख्य सेनापति को बृहदश्ववार कहते थे। हर्षचरित में इस पद पर कुन्तल का नाम मिलता है।

पैदल और अश्व सेना के मिले-जुले अधिकारी को 'भटाश्वपति' कहते थे।

हस्ति सेना के मुख्य को 'कटुक' कहते थे।

सैनिक-निवास के निरीक्षकों को पाति-पति कहते थे। नियमित-अनियमित सैनिकों को चाट-भाट कहते थे।

युद्ध के समय जहाँ पर सेना पड़ाव डालती थी उसे 'स्कन्धावार' कहते थे।

युद्ध-सामग्री के भंडार के अधिकारी को 'रण-भांडागाराधिकृत अथवा भांडागारिणि कहा जाता था और रण-भंडार के विभाग को रणभांडागाराधिकरण कहते थे।[७]

६—Watters, vol. I, p. 171. Harsa, Mukerji, p.97.

७—Harsha, Mukerji, p. 111.

जनता की सुरक्षा, जान-माल की हिफाजत, और न्याय व शांति को बनाये रखने के लिये पुलिस अथवा सुरक्षा-विभाग का समुचित प्रबंध था। चोरों का पता लगाने और पकड़ने वाले अधिकारी को 'चारोद्धरणिक', और 'दण्डिक' कहते थे। पुलिस के सिपाही 'दण्ड-पाशिक' (डंडे और पाश अथवा रस्सी रखने वाले) कहलाते थे।[८]

बाण के अनुसार रात्रि में पहरा देने के लिये स्त्री-निरीक्षक नियुक्त थीं, जिन्हें याम-चेटि कहते थे। इससे प्रतीत होता है कि अपराधी-वर्ग में स्त्रियाँ भी हुआ करती थीं; इसलिये स्त्री-वर्ग के अपराधियों को पता लगाने और पकड़ने के हेतु सुरक्षा-विभाग में स्त्रियों को भी नियुक्त किया जाता था।

गुप्तरूप से अपराधियों का पता लगाने के लिये गुप्त-चर भी नियुक्त थे। गुप्तचर छिपकर काम करते थे और वे कहीं भी आ-जा सकते थे। हर्षचरित में सर्वगतः नाम के एक अधिकारी का उल्लेख है, जो संभवतया गुप्तचर-विभाग का ही अधिकारी था।[९]

ह्वेनसांग के अनुसार शासन का सचाई से नियमन होने अथवा सुप्रबंध के कारण अपराधी-वर्ग की संख्या बहुत कम थी।[१०] किन्तु ह्वेनसांग को अपने भारत-पर्यटन के समय चोर-डाकुओं से जो विपत्ति उठानी पड़ी उससे तथा उस समय के दंड-विधान को देखते हुये, यह कह सकते हैं कि फाहयान के पर्यटन के समय चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य के राज्यकाल में मार्ग जैसे सुरक्षित थे और अपराधी-वर्ग का जितना कम

८—Ibid.

९—Hc. C & T., p. 27, History of Kanauj, p. 14.

१०—"As the Government is honsetly administered and the people live together on good terms the criminal class is small"—Watters, vol. I, p. 171.

भय रह गया था, वह बात अब नहीं थी। अयोध्या के तीर्थ-स्थानों का पर्यटन करके ह्वेनसांग जब गंगा के मार्ग से चौरासी अन्य यात्रियों के साथ पोत-द्वारा हयमुख की ओर जा रहा था तो रास्ते में डाकुओं की दस नावों ने उन्हें घेर लिया और उनके जहाज को खेकर तट पर ले आये। डाकुओं से घबड़ा कर कुछ एक यात्री तो जहाज से नदी में कूद पड़े और बाकी नंगे करके लूट लिये गये। इस अवसर पर डाकुओं ने दुर्गा को ह्वेनसांग की नर-बलि देने का भी निश्चय किया था, किन्तु जब वे बलि चढ़ाने जा रहे थे तभी यकायक प्रकृति ने तूफान पैदा करके ऐसा कोप प्रकट किया कि डाकू भयभीत हो उठे और अंत में उन्हें अपने अपराधों के लिये महान् चीनी-संत से क्षमा की भीख माँगनी पड़ी। ह्वेनसांग की साधुता और धार्मिकता से प्रभावित होकर डाकुओं ने भविष्य में डाका न डालने का भी संकल्प किया और चौर-कर्म छोड़कर वे बौद्ध-धर्म के साधारण उपासक बन गये।[११]

ह्वेनसांग को साकल के प्रदेश में भी डाकुओं के गिरोह से पाला पड़ा था। साकल का पर्यटन करके ह्वेनसांग जब लाहौर (ठका) की ओर जा रहा था तो रास्ते के एक बड़े पलास के जगल में पचास डाकुओं ने उन्हें घेर कर लूट लिया और फिर उन्हें मारने की तैयारी करने लगे। किन्तु इस बार भी संयोग से लूटेरों की निगाह बचाकर ह्वेनसांग और उसके साथी श्रमण भाग निकले और अंत में एक ब्राह्मण किसान की मदद से गाँव के बहुत से आदमियों को एकत्र कर डाकुओं को खदेड़ दिया गया और जो आदमी उनके बन्दी बनाये हुए थे उन्हें छुड़ा लिया गया।[१२]

चोर-डाकुओं के इन नृशंस-कर्मों के कारण ही हर्ष के समय का दंड-विधान गुप्त-युग के दंड-विधान से अधिक सख्त और कड़ा था। अतः

११—Life, 86 to 89.
१२—Ibid, pp. 73-74.

ह्वेनसांग लिखता है कि "न्याय-विधान के विरुद्ध आचरण करने और सम्राट् के विरुद्ध षड़यंत्र करने वाले का अपराध प्रकट होने पर उसे आजन्म-कारावास का दंड दिया जाता था; और यद्यपि उसे शारीरिक-दंड (corporal punishment) नहीं मिलता था, परन्तु जीवित अथवा मृत किसीभी दशा में उसे समाज का सदस्य अथवा व्यक्ति नहीं स्वीकार किया जाता था।

"सामाजिक आदर्शों (अथवा अनैतिक कार्यों) के विरुद्ध आचरण करने, तथा पितृधर्म के विपरीत व्यवहार करने व अभक्ति के लिये* अपराधी का नाक, कान, अथवा पैर काट लिया जाता था, अथवा अपराधी को देश से निकाल दिया जाता था या किसी उजाड़ निर्जन-स्थान को भेज दिया जाता था।

---

* ह्वेनसांग का कथन, जो वॉटरस् ने दियां है, इस प्रकार है—"for offences against social morality, and disloyal and unfilial conduct", ...अशोक के शिलालेखों में भी 'माता-पिता, बन्धु-बान्धुओं' आदि के प्रति अच्छा आचरण करने का बहुधा उल्लेख है। इसी तरह अन्य सामाजिक उच्चादर्शों पर भी जोर दिया गया है। प्रकट है कि बौद्ध-धर्म में इन सब बातों का बहुत महत्त्व था और इस कारण उक्त आदर्शों के विपरीत आचरण करना अशोक और हर्ष जैसे बौद्ध-सम्राटों के सामने गुरुतर अपराध था। डा० त्रिपाठी ने 'disloyal and unfilial conduct' का 'अविश्वसनीय आचरण और व्यभिचार' अर्थ किया है (प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ २२९)। किन्तु वि० स्मिथ ने 'माता-पिता' के प्रति आचरण से ही अर्थ लगाया है, वह लिखता है—"mutiliation of the nose, ears, hands, or feet being inflicted as the penalty of serious offences, and even for failure in filial piety". (Early History of India, IIIrd ed., p. 342)।

दूसरे अपराधों (साधारण प्रकार के) के लिये जुर्माने का दंड ही काफी समझा जाता था।[१३] अभियुक्त के अपराध की सत्यता व असत्यता प्रमाणित करने के लिये जल, अग्नि, तुला और विष के द्वारा दिव्य-परीक्षा (ordeal) भी ली जाती थी। यह वृत्त इस बात का साक्षी है कि न्याय-विधान में 'अंधविश्वास' का स्थान अभीतक बना हुआ था। किन्तु इस प्रकार के अंधविश्वास उस समय के जगत में शायद लोकमान्य थे, यही कारण है कि ह्वेनसांग ने उनका सहमति के साथ वर्णन किया है।[१४]

१३—Watters, vol. I, p. 172.

१४—Ibid. **दिव्य-परीक्षाओं के प्रकार पर ह्वेनसांग लिखता है**—"In the water ordeal the accused is put in one Sack and a stone in another, then the two Sacks are connected and thrown into a deep stream; If the Sack containing the store floats, and the other Sanks, the man's guilt is proven.

The fire ordeal requires the accused to kneel and tread on hot iron, to take it in his hand and lick it; If he is innocent he is not hurt, but he is burnt if he is guilty. . . .

In the weighing ordeal the accused is weighed against a stone; and if the latter is the lighter the charge is false, if otherwise it is true.

The poison ordeal requires that the right hind leg of a ram be cut off, and according to the portion assigned to the accused to eat, poisons are put

सुव्यवस्था और सुप्रबन्ध के लिये साम्राज्य भुक्ति (प्रान्त), विषय (जिला), पथक (तहसील या तालुका) और ग्राम (गाँव) में विभाजित था। हर्ष के मधुबन - अभिलेख में श्रावस्ती-भुक्ति और बाँसखेड़ा-अभिलेख में अहिच्छत्र-भुक्ति का उल्लेख मिलता है; और विषयों में कुण्डधानि और अंगडीय विषय का उल्लेख आया है।[१५] मधुबन-लेख में कुण्डधानि विषय के सोमकुंडका ग्राम का भी उल्लेख है।

ग्राम अथवा गाँव शासन की सब से छोटी इकाई थे।

प्रान्त के शासन के लिये हर्षचरित के अनुसार लोकपाल अथवा प्रान्तीय शासक या गवर्नर नियुक्त किये जाते थे। प्रान्तीय शासकों को संभवतया 'राजस्थानीय', व उपरिक अथवा उपारिक महाराज तथा भोगपति कहा जाता था (मधुबन लेख में पहले दो नाम आये हैं और अंतिम नाम हर्षचरित में आया है)। डा० त्रिपाठी के मत में भोगपति संभवतया भोग अथवा भूमि की ऊपज का ⅙ अंश जो राज्य का भाग (राजस्व) होता था उसका वसूल करने वाला अधिकारी था।[१६] गुप्तयुग की तरह शायद प्रान्तीय शासक को सम्राट् स्वयं नियुक्त करता था।

विषय का अधिकारी विषयपति कहलाता था। गुप्तों के समय में विषयपति प्रान्तीय-शासकों द्वारा नियुक्त किये जाते थे जिस कारण विषयपतियों को 'तन्नियुक्ता' (उनके द्वारा नियुक्त) कहा गया है।

---

into the leg, and if the man is innocent he survives, and if not the poison takes effect".

१५—Epigraphia Indica, vol. IV, p. 211. vol. VII, p. 158.

१६—History of Kanauj, p. 140. फ्लीट भोगपति को भुक्ति के अधिकारी से मिलाता है।

कभी-कभी विषयपति सीधे सम्राट् द्वारा भी नियुक्त किये जाते थे। विषयपतियों के कार्यालय अथवा अधिकरण नगरों अथवा अधिष्ठानों में होते थे। गुप्तयुग के दामोदरपुर के ताम्रलेखों से यह भी मालूम होता है कि विषयपति को शासन में सलाह देने के लिये एक समिति भी होती थी, जिसके सदस्य ये थे—

(१) नगर-श्रेष्ठी (नगर के निवासियों का मुखिया)।

(२) सार्थवाह (व्यापारियों अथवा व्यापार-श्रेणियों का नेता या मुखिया)।

(३) प्रथम-कुलिक (शिल्पियों अथवा शिल्प-श्रेणियों का मुखिया)।

(४) प्रथम कायस्थ (लेखक वर्ग का मुखिया या प्रतिनिधि)।[१७]

महत्तर—ग्राम का अधिकारी या मुखिया संभवतया महत्तर कहलाता था। हर्षचरित के वर्णनानुसार ये गाँव के वयोवृद्ध पुरुषों में से होते थे। श्री पानिकर के अनुमान में महत्तर से अभिप्राय नगर के श्रेष्ठ व्यक्तियों से है जो संभवतया नगर-शासन-सभा के सदस्य होते थे। नगर शासन का मुख्याधिकारी श्री पानिकर के अनुमान में 'द्रंगिक' कहलाता था।*

आग्रहारिक—संभवतया ये देवताओं और ब्राह्मणों को दान में दी गयी भूमि के प्रबंधक-अधिकारी थे। श्री गौरीशंकर चटर्जी के अनुमान में गाँव के जमींदारों को भी शायद आग्रहारिक कहा जाता था।

१७—Epigraphia Indica, vol. XV, p. 133 ff. Harsha, Mukerji, p. 109. History of Kanauj, p. 139.

* Shri Harsha, p. 33—"The chief authority in a city was a Drangika or a Mayor....Mahattaras-lilerally greatermen seems to show that some sort of a muncipal government existed".

ग्रामाक्षपटलिक—यह ग्राम के संबंध के कागज-पत्रों को रखने वाला अधिकारी था। हर्ष के प्रथम अभियान के समय यह अधिकारी अपने सहयोगियों सहित सम्राट् से मिला था और उसने महाराज हर्ष को नन्दी के लक्षण-युक्त एक सुवर्ण की बनी मुहर भेंट की थी।[१८]

हर्षचरित और हर्ष के अभिलेखों से ज्ञात अन्य बड़े तथा छोटे अधिकारियों के नाम नीचे दिये जाते हैं—

(१) कुमारामात्य—इस अधिकारी के संबंध में विद्वानों की भिन्न राय है। डा० ब्लोच (Dr. Bloch) के अनुसार ये वे अधिकारी थे जो कुमारावस्था से सम्राट् की सेवा में नियुक्त थे।[१९] डा० भंडारकर के अनुसार यह राजवंश के कुमारों की एक सलाहकार समिति या सभा थी, जिससे सम्राट्-राज्य के प्रमुख विषयों पर मंत्रणा लिया करते थे।[२०] कुछ विद्वान् कुमारामात्य से अभिप्राय प्रान्त के कुमार शासकों के आमात्य से लेते हैं, जो कुमारामात्य के शाब्दिक अर्थानुसार असंगत नहीं प्रतीत होता।[२१]

(२) महाराज—यह हर्ष के अधीनस्थ सामंत और महासामंत राजाओं की उपाधि थी। बांसखेड़ा-ताम्रपत्र में महासामंत महाराज भानु और सामंत ईश्वरगुप्त; और मधुबन-लेख में महापरमाता, महासामंत दूतक स्कंदगुप्त का उल्लेख है। हर्षचरित में स्कंदगुप्त हस्तिसेना के सेनापति अथवा कटुक कहे गये हैं। ये उद्धरण यह भी लक्षित करते हैं कि राज्य के ऊँचे पदों पर सामंत व महासामंत भी नियुक्त किये जाते थे,

---

१८—Hc. C. T., p. 198.

१९—Epigraphia Indica, vol. X, p. 50. note 2.

20—Indian Antiquary, vol. XI, p. 176.

२१—C. I. I. III, p. 16, Note 7. हर्षवर्द्धन, श्री गौरीशंकर चटर्जी, पृष्ठ १७१।

और एक अधिकारी के पास कभी-कभी एक साथ कई एक विभाग भी रहा करते थे।

(३) दूतक—फ्लीट के अनुसार दूतक वह अधिकारी था जो दान-ग्रहिता को दान-पत्र तो नहीं ले जाता था, लेकिन स्थानीय अधिकारी को दान के संबंध में सम्राट् का निर्देश और स्वीकृति पहुँचाता था और स्थानीय अधिकारी तद्नुसार दान-पत्र लिखकर दान-ग्रहिता को समर्पित करता था।

दूतक विशेषतया उच्चाधिकारी होता था। बाँसखेड़ा ताम्रपत्र में इस पद के अधिकारी का नाम महापरमातार महासामन्त श्री स्कन्दगुप्त लिखा है।

(४) महापरमातार—ललितासुरदेव के पाण्डुकेश्वर अभिलेख में भी 'महाराजा परमातार' का उल्लेख है। देवपाल के अभिलेख में भी परमातारि या परमातार का उल्लेख है। बुलर (Buhler) के अनुसार यह शायद धर्म-उपदेशक या आध्यात्मिक मंत्रणा देनेवाला (spiritual councillor) अधिकारी था।[२२] महापरमातार के नीचे परमातार होता था।

(५) दाःसाधनिक—इसका अर्थ होता है कठिन कार्यों को करने वाला। श्री बसाक के अनुसार यह ग्रामों का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी था।[२३] इस अधिकारी का नाम ललितासुरदेव के अभिलेख में भी आया है।[२४]

(६) महाक्षपटलाधिकरणाधिकृत; यह संभवतया समस्त राजकीय कागज-पत्रों को रखनेवाला सबसे प्रमुख अधिकारी था। बाँसखेड़ा

२२—Epigraphia Indica, vol. I, p. 15 and p. 118, Note 36.

२३—Epigraphia Indica, vol. XII, pp. 43, 141.

२४—Indian Antiquary, vol. XV, p. 182.

श्रौर मधुवन अभिलेखों में इस पदाधिकारी का नाम महासामंत महाराज भानु और सामंत महाराज ईश्वरगुप्त मिलता है।

(७) अक्षपटलिक—यह भी राजकीय कागज-पत्रों का अधिकारी था। निःसंदेह यह छोटे दर्जे का अधिकारी था जो संभवतया महाक्ष-पटलिक के नीचे काम करता था।*

ह्वेनसांग ने भी राज्यकाल की घटनाओं आदि के लिखने और राजकीय कागज-पत्रों को रखनेवाले अधिकारियों का उल्लेख किया है। ह्वेनसांग के अनुसार ऐसे सरकारी कागज-पत्रों को सामुहिक रूप से नी-लो-पि-तु कहते थे।[२५]

(८) पुस्तकृत—हर्षचरित के पुस्तकृत को दामोदरपुर ताम्रपत्रों में उल्लेखित पुस्तपाल से मिलाया जाता है। संभवतया ये भूमि-संबंधी लेखा-जोखा रखनेवाले अधिकारी थे जैसे पटेल अथवा पटवारी। डा० बसाक के अनुसार इन अधिकारियों की रिपोर्ट के आधार पर ही सरकार किसी को भूमि बेचने व खरीदने की स्वीकृति देती थी।[२६]

(९) लेखक और करणिक—हर्षचरित में उल्लेखित इन अधि-कारियों को लिखनेवाले अथवा क्लर्क समझा जाता है। ग्रामाक्षपटलिक अपने समस्त 'करणिकों' सहित ही सम्राट् से मिलने गया था।[२७] करणिक तो निश्चय रूप से क्लर्क मालूम होता है, लेकिन लेखक से अभिप्राय, घटनाओं व दान-पत्र आदि के लिखनेवाले अधिकारी भी हो सकता है जो क्लर्कों से भिन्न और ऊँचे पद के रहे होंगे। लेखक को 'दिविर' भी कहते थे। बहुत से दिविरों के ऊपर दिविरपति होता था।

२५—Watters, vol. I. p. 154.

*—हर्षवर्द्धन, गौरीशंकर चटर्जी, पृष्ठ १७८।

२६—Epigraphia Indica, vol. XV, p. 128.

२७—'ग्रामाक्षपटलिकः सकल करणिपरिकरः'। Hc. C. T., p. 198.

(१०) आयुक्तक और अध्यक्ष—इन दो का हर्षचरित में उल्लेख आया है। डा० थॉमस के अनुसार ये संभवतया राज्य के छोटी श्रेणी के अधिकारी थे जो दौरे के समय बड़े अधिकारियों के साथ जाया करते थे।[२८] डा० त्रिपाठी इन्हें समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति के 'आयुक्त-पुरुषों' से मिलाता है।[२९] गुप्त-अभिलेखों में युक्त और विनययुक्तक नाम के अधिकारियों का भी उल्लेख आता है। श्री गौरीशंकर चटर्जी के अनुमान में आयुक्तक विषयपति अथवा जिलाधीश के पद पर काम करते थे और इस प्रकार वे अपनी अधीनस्थ प्रजा का हित व अनहित कर सकते थे।[३०]

अध्यक्ष से अभिप्राय शायद राज्य के अथवा शासन के विभिन्न विभागों के मुख्यों से है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी विभागों के मुख्यों को अध्यक्ष कहा गया है। ये संभवतया मंत्रियों के नीचे काम करते थे।

(११) दूत—यह भी एक प्रधान अधिकारी था। दूसरे देशों से मैत्री-संबंध स्थापित करने और दूसरे राज्यों से मैत्री-संधि स्थापित करने का काम दूत अथवा राजदूत (ambassador or envoy) ही करते थे। हर्षचरित के अनुसार हर्ष से मैत्री-स्थापना के लिये हंसवेग नाम का दूत भेजा गया था। चीन से मैत्री संबंध कायम करने के लिये ६४१ ई० में हर्ष ने एक ब्राह्मण राजदूत तांगसम्राट् ताईजुंग (Tai-Tsung) के दरबार में भेजा था। पहले दूत के बाद शीघ्र ही दूसरा दूत-मंडल भी चीन भेजा गया था।[३१]

२८—Journal of Royal Asiatic Society., 1909, p. 467.

२९—History of Kanauj, p. 140.

३०—हर्षवर्द्धन, पृष्ठ १७४।

३१—Watters, I, p. 351. डा० त्रिपाठी के अनुमान में "His (Harsha) diplomatic relations with China

(१२–१३) दीर्घाध्वग और लेखहारक—हर्षचरित में उल्लेखित ये दो, डाक-विभाग के अधिकारी मालूम होते हैं।

दीर्घाध्वग, एक जगह से दूसरी जगह तेजी से समाचार लाने-ले जाने वाले डाकिया थे। लाइफ के अनुसार कामरूप के कुमार-राज ने जिस दूत को पत्र पहुँचाने शीलभद्र के पास नालन्द भेजा था, वह दो दिन में वहाँ पहुँच गया था।[३२]

लेखहारक संभवतया पत्र पहुँचानेवाले हरकारे थे। इसी तरह के एक पत्रवाहक ने प्रथम अभियान के समय भंडि के आने का समाचार सम्राट् हर्ष को पहुँचाया था।[३३]

ह्वेनसांग के अनुसार राज्य-संबंधी कार्यों के लिये आवश्यकतानुसार ऐसे डाकिये नियुक्त थे जो हर समय डाक लाते ले जाते थे।*

(१४) महाप्रतिहार या दौवारिक—यह राजप्रासाद का प्रमुख अधिकारी और रक्षक था। राजा से मिलने आये हुये व्यक्तियों का नाम राजा को पहुँचाना और स्वीकृति मिलने पर राजा के सामने उन्हें उपस्थित करना उसी का काम था। हर्षचरित में इस पदाधिकारी का नाम परियात्र दिया है, जिन्हें सम्राट् हर्ष बहुत मानते थे।[३४]

---

were probably meant as a counterpoise to the friendship that Pulakesin II, his Southern rival, cultivated with the king of Persia about which we are informed by Arab Historian Tabari".

(History of Kanauj, p. 132).

३२—Life, Beal, p. 169.

३३—Hc. C. T., p. 223.

*—Records, I, p. 213.

३४—Hc. C. T., p. 198, Note 3.

PERSONAL COLLECTION

(१५-१६) **प्रतिनर्त्तक और स्थपति**—राजप्रासाद के इन कर्मचारियों का उल्लेख गुप्त-अभिलेखों में मिलता है। शायद ये कर्मचारी हर्ष के समय भी मौजूद थे। स्थपति अथवा स्थपति-सम्राट् अंतःपुर के कर्मचारियों के अधिपति या निरीक्षक थे।

प्रतिनर्त्तक से अभिप्राय शायद भाट, मागध व वंदीजन से है।[३५]

(१७) वेत्री—यह नाम हर्षचरित में आया है। यह भी राजप्रासाद का कर्मचारी था। संभवतया वेत्री कंचुकी को कहते थे जो कि सामान्यतः वृद्ध ब्राह्मण हुआ करता था।

(१८) पुरोहित-ज्योतिषी-मौहूर्त्तिक-पौराणिक आदि—बाण ने इन सबका उल्लेख किया है। ये सब राजमहल के धार्मिक कृत्यों व अनुष्ठानों को करानेवाले ब्राह्मण अधिकारी थे। पुरोहित पूजा-कार्य कराता था; ज्योतिषी ज्योतिष-संबंधी कार्य करता था; मौहूर्त्तिक राजकार्यों, यात्रा व अभियान आदि के लिए शुभ-लग्न निश्चित् करता था और पौराणिक संभवतया पुराण-इतिहास व गाथा आदि बाँचकर सुनाता था।

(१९) मीमांसक—यह संभवतया मीमांसा दर्शन की व्याख्या करनेवाला राज-अधिकारी था।[३६] डा० त्रिपाठी के अनुमान में मीमांसक संभवतया न्यायाधीश थे।[३७]

ह्वेनसांग के अनुसार राज्य के सभी कर्मचारियों को उनके कामों के अनुसार वेतन मिला करता था। राज्य के मंत्रियों व सामान्य अधिकारियों को भूमि और नगर भी जागीर में दिये जाते थे।*

३५—C. I. I., vol. III, p. 119.

३६—Epigraphia Indica, vol. XIV, p. 325 and 141.

३७—History of Kanauj, p. 141.

*—Watters, I, pp. 176-177.

सम्राट् और मंत्री परिषद्

हर्ष की राजकीय उपाधियाँ अभिलेखों के अनुसार परमभट्टारक महाराजाधिराज थी और हर्षचरित के अनुसार परमेश्वर थी। ह्वेनसांग के अनुसार उसकी एक उपाधि 'शिलादित्य' भी थी।[३८] राजा को देवताओं के अंश से बना हुआ माना जाता था। बाण ने हर्ष को 'सर्वदेवावतारमिवैकत्र' (सब देवताओं का सम्मिलित अवतार) कहा है। अतः राजा न्याय, शासन और सेना का सर्वोच्च अधिकारी माना जाता था। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं था कि राजा मनचाही कर सकता था और उस पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं था।

श्री पानिकर के शब्दों में यद्यपि हर्ष की सत्ता एक अर्थ में निजी अथवा एकतंत्रीय थी—लेकिन राजकीय शासन किसी तरह निरंकुश न था।* निःसंदेह भारत के प्राचीन राजा राज्य के सर्वेसर्वा होते हुये भी, लौकिकधर्म, स्मृतिकारों के निर्देश और प्रचलित रीति-रिवाजों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया करते थे। वे प्राचीन शास्त्रकारों के 'राजधर्म' के सिद्धान्तों से बँधे होते थे। महाभारत, कौटिल्य और शुक्र जैसे नीतिकारों ने राजा को प्रजा का प्रथम सेवक बतलाया है और प्रजा के हित और सुख को ही अपना सुख और हित समझने का निर्देश दिया है। कौटिल्य ने दिन-रात प्रजा के कार्यों में लगा रहना ही राजा का परम-कर्त्तव्य

३८—हर्षचरित तथा हर्ष के अभिलेखों में इस उपाधि का उल्लेख नहीं है। सम्भवतया हर्ष की एक उपाधि सार्वभौम भी थी (Harsha, Mukerji, p. 118)।

*—"....There can be no doubt that though Harsha's Government was personal in one sense the royal authority was by no means despotic."

(Harsha, p. 32).

बतलाया है और इसी प्रकार शुक्र ने राजा का निर्माण प्रजा की सेवा के लिये घोषित किया है। राजधर्म के ये ऊँचे सिद्धान्त केवल पोथी के लिये ही नहीं थे, किन्तु प्राचीन भारत के बड़े-बड़े सम्राटों ने (चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य आदि) उन सिद्धान्तों का अपने जीवन में पालन भी किया था।

हर्ष भी सच्चे रूप से राजधर्म का पालन करनेवाले प्राचीन महान् सम्राटों की पंक्तिमें प्रमुख स्थान रखता है। बाण और ह्वेनसांग दोनों से हमें मालूम होता है कि अपने उच्चपदस्थ मंत्रियों और मंत्री-परिषद् की सलाह और सम्मति का वह बहुत मान और आदर करता था और तद्नुसार कार्य करने में कोई असम्मान नहीं समझता था। बाण के अनुसार राज्य-वर्धन की हत्या होने पर सेनापति सिंहनाद और हस्तिसेना के अधिपति स्कन्दगुप्त तथा संधिविग्रहाधिकृत अवन्ति ने दुःखी और विह्वल हर्ष को अपने राजधर्म और कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक होने और भाई के हत्यारे से प्रतिशोध लेने की उत्साहपूर्ण मंत्रणा दी थी जिसे हर्ष ने सम्मान के साथ स्वीकार किया था। ये वृत्त इस बात के भी प्रमाण हैं कि उच्चपदस्थ अधिकारियों व मंत्रियों को राजा को सलाह देने का पूरा अधिकार प्राप्त था, और राजा उनकी मंत्रणा को साधिकार और मान्य समझता था।

ह्वेनसांग के अनुसार राज्यवर्धन स्वेच्छा से नहीं वरन् अपने मंत्रियों की सलाह से ही कर्णसुवर्ण के राजा शशांक के शिविर में गया था, जहाँ उसकी हत्या कर दी गयी। कन्नौज का राजसिंहासन भी ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष ने वहाँ के मंत्रियों और उनके प्रमुख बानि अथवा पोनी के कहने पर ही ग्रहण किया था। ह्वेनसांग द्वारा उल्लेखित ये वृत्त भी इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि राज्य के मामलों को निश्चित करने और महत्त्व के विषयों पर सलाह देने का मंत्री-परिषद् को पूरा अधिकार प्राप्त था, दूसरे शब्दों में राज्य के शासन और संचालन में राजा को मंत्रियों की मंत्रणानुसार कार्य करना होता

था। अतः मंत्री तथा मंत्री-परिषद् राजा की निरंकुशता पर अवरोधक का काम करते थे। श्री पानिक्कर के अनुसार सामंत राजा व महाराजाओं का अस्तित्व भी सम्राट को निरंकुश होने से रोकता था; क्योंकि निरंकुश होने पर अधिपति सम्राट् को सामंतों द्वारा विद्रोह किये जाने का भय रहा करता था।[३९]

हर्ष स्वयं राजपद को दैव-प्रदत्त अधिकार नहीं मानता था। ह्वेन-सांग के अनुसार कन्नौज का राजसिंहासन ग्रहण करने के संबंध में हर्ष जब 'अवलोकितेश्वर' के सामने गया था तो उसने अपने को तुच्छ बतलाते हुए कहा था कि 'यद्यपि मैं राजपद के योग्य नहीं हूँ, लेकिन जनता मुझे उस पद पर आसीन करना चाहती है।'[४०] हर्ष मंत्रियों और जनता के सहयोग को कितना महत्त्व देता था, यह उसके उस आदेश से भी स्पष्ट है जो उसने कन्नौज का राज ग्रहण करने पर शत्रुओं के विरुद्ध संगठित मोर्चा कायम करने के संबंध में मंत्रियों को दिया था। वह आदेश इस प्रकार था : 'आप जनता और अधिकारी सब एक दिल से संगठित होकर अपनी शक्ति लगाइये (शत्रुओं के विरुद्ध)।'[४१]

३९—"....The existence of local rajahs or samantas, who were left more or less in the full enjoyment of their authority, was a great check on royal autocracy". (Ibid, p. 32).

४०—"I humble myself as one of little virtue, nevertheless, the people would exalt me to the royal dignity". (Records, vol. I, p. 212).

४१—"And now he commanded his ministers, saying, "The enemies of my brother are unpunished as yet, the neighbouring countries not brought

महान् अशोक ने सर्वभूतों की अक्षति, संयम और समचर्य्या (अपक्षपातिता) और मोद (प्रसन्नता अथवा सुख) को अपने जीवन की अभिलाषा, आकांक्षा व ध्येय घोषित किया था; इसी आदर्श का अनुसरण करते हुये हर्ष ने भी सबसे बड़ा पुण्य और धर्म 'मन, वचन और कर्म से जीवमात्र की सेवा करना' बतलाया। यह आदर्श केवल घोषित ही नहीं किया गया, वरन् उसका अशोक की भाँति हर्ष ने पालन भी किया था। प्रजा के सुख-दुःखों की जानकारी प्राप्त करने और साम्राज्य की वास्तविक दशा का पता लगाने के लिये अशोक को तरह ही हर्ष अपने राज्य का भ्रमण अथवा दौरा किया करता था। बरसात के तीन-चार महीनों को छोड़कर बाकी वर्ष भर राजकीय दौरे हुआ करते थे, जैसा कि ह्वेनसांग के विवरण से प्रकट है। दौरे के समय ह्वेनसांग लिखता है कि राजा बहुत समय तक किसी एक स्थान में नहीं रुकता था और प्रत्येक ठहरने के स्थान पर अस्थायी-निवास निर्मित किये जाते थे।[४२]

ह्वेनसांग के अनुसार जब हर्ष पूर्वी-देशों के दौरे पर निकला था, तो उसने काजंगल अथवा राजमहल में दरबार किया था। यहाँ पर ठहरने के लिये वासगृह घास-फूस को काटकर बनाये गये थे और जब वहाँ से दूसरे स्थान के लिये कूच किया गया तो उन्हे (वासगृहों) जला दिया गया था।[४३] संभवतया अस्थायी वासगृहों को निर्मित करने का बहुत

---

to submission, while this is so my right hand shall never lift food to my mouth. Therefore do you, people and officers unite with one heart and put out your strength". (Ibid, p. 213).

४२—Watters, vol. I, p. 344.

४३—Watters, vol. II, p. 183 and Records, vol. I, p. 215.

कुछ सामान भी सम्राट् के साथ-साथ चला करता था।[४४] हर्षचरित और अभिलेखों से भी सम्राट् के भ्रमण-काल के जयं-स्कंधावारों (अस्थायी निवास-स्थान) का पता चलता है। हर्षचरित में अजिरावती नदी के तट पर स्थित मँणितारा जयस्कंधावार का उल्लेख है, जहाँ पर बाण ने सम्राट् से प्रथम भेंट की थी।[४५] बाँसखेड़ा और मधुबन के अभिलेखों में वर्धमानकोटी और कपित्थक (संकाश्य) के जयस्कंधावारों का उल्लेख है, जहाँ भ्रमण-काल में हर्ष ने कुछ समय निवास किया था। हर्षचरित के विवरण से यह भी प्रकट होता है कि राजकीय दौरों के अवसर पर आसपास की ग्रामीण-जनता सम्राट् से भेंट किया करती थी और उसे अपनी शिकायतों आदि से अवगत करती थी। अच्छे अधिकारियों की वे प्रशंसा करते थे और बुरों की शिकायत करते थे।[४६] ह्वेनसांग के अनुसार सम्राट् दौरों के समय अपने जय-स्कंधावारों में रोजाना सब धर्मों के साधु-संतों को मिष्ठ-भोजन कराया करते थे। आमंत्रित किये जानेवालों में लगभग एक हजार बौद्ध, एक हजार श्रमण और पाँच सौ के लगभग ब्राह्मण साधु हुआ करते थे।[४७]

दौरों के समय का अभियान बहुत शानदार हुआ करता था। अनेकों सामंत और उच्चाधिकारी सम्राट् के साथ रहते थे। सहस्रों स्वर्ण दुंदभीवाले व्यक्ति अभियान के साथ-साथ चला करते थे और सम्राट् के प्रत्येक पग बढ़ाने पर दुंदुभी पर एक चोट दिया करते थे। लाइफ के अनुसार अभियान का यह प्रकार और कोई राजा नहीं बरत सकता था;[४८]

४४—Records, vol. I, p. 215, Note 27.
४५—Hc. C. T., p. 46.
४६—Hc. C. T., p. 208.
४७—Records, vol. I, p. 215.
४८—Life, p. 173.

जिससे यह लक्षित होता है कि हर्ष आर्यावर्त्त का सार्वभौम राजा था और इसीलिये अन्य राजाओं को उसकी बराबरी करने का अधिकार न था।

ह्वेनसांग से यह भी मालूम होता है कि नगरवासियों के आचरण या व्यवहार में असंयम अथवा दुराचार की खबर पाने पर हर्ष नागरिकों में जा पहुँचता था;[४९] अर्थात् दूसरे शब्दों में नागरिकों की बुराइयों को सुधारने के लिये सम्राट् स्वयं उनके बीच पहुँच कर उन्हें सही मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया करते थे और जो धर्माचरण की ओर प्रवृत्त नहीं हो सकते थे उन्हें दंड देकर सीधा किया जाता था।

सम्राट् का दिन, ह्वेनसांग कहता है तीन भागों में विभाजित था। पहला भाग वह राज-कार्यों में व्यतीत करता था और शेष दो भाग धर्म-कर्म में व्यतीत होते थे। अशोक की तरह वह पराक्रम करने में कभी थकता न था और दिन उसे पूरा न पड़ता था। सुकर्मों के करने में सम्राट् इतना तल्लीन रहता था कि खाने और सोने की भी उसे सुध न रहती थी। पड़ोसी अथवा सामन्त राजा तथा राजनीतिज्ञ जो उसी की तरह अच्छे कार्यों के लिये पराक्रम किया करते तथा उच्च आदर्शों के लिये अथक परिश्रम किया करते थे उन्हें सम्राट् अपना 'सुहृद-मित्र' मानता था और उन्हें अपने ही पास स्थान देता था; लेकिन जो विपरीत आचरण वाले थे उनसे सम्राट् बातें करना भी नहीं पसन्द करता था।[५०] ह्वेनसांग के इस उल्लेख से स्पष्ट है कि सम्राट् अपने अधीनस्थ राजाओं, सामंतों और उच्चाधिकारियों को भी जनसाधारण के हितार्थ कार्य करने को प्रेरित किया करते थे और विपरीत आचरण करने वालों को दंड भी दिया करते थे।

राज्य की आयके मुख्य साधन भूमि-कर और व्यापार-कर थे। भूमि-कर ऊपज का $\frac{1}{6}$ होता था। व्यापार-कर हल्का था। यह कर

४९—Records, vol. I, p. 215.

५०--Ibid, and Watters, vol. I, p. 344.

घाटों तथा सीमान्त के नाकों पर वसूल किया जाता था।[५१] भूमि-कर को उद्रंग कहते थे। मधुबन और बांसखेड़ा अभिलेखों में अन्य प्रकार के शुल्कों अथवा करों का भी उल्लेख है; जैसे तुल्यमेय (वस्तुओं के नाप-तौल के आधार पर लिया जानेवाला कर; श्री गौरीशंकर चटर्जी के मत में अनाज की मंडियों से बिकी हुई वस्तुओं के नाप-तौल के आधार पर कर संग्रह किया जाता था)[५२]; भाग-भोग कर (भोग की वस्तुओं में राजा का भाग; अर्थात् फल-फूल, लकड़ी तथा अन्यान्य भोग के पदार्थ गाँव वालों को राजा को देने होते थे) और हिरण्य (सुवर्ण या सिक्कों में दिया जाने वाला कर) आदि। गाँव वालों को राजा की सेवा व बेगार-कार्य (विष्ठ) भी करना होता था।[५३] ह्वेनसांग के अनुसार कर बहुत कम थे, और बेगार बहुत कम ली जाती थी जिस कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने परंपरागत धंधों को करता हुआ पैतृक-पेशे पर कायम रहता था।[५४]

हर्ष के सुशासन और सुव्यवस्था की प्रशंसा करते हुये ह्वेनसांग कहता है कि चूंकि सरकार उदार थी इसलिये राजकीय आवश्यकताएँ कम थीं। परिवारों को रजिष्ट्र नहीं किया जाता था याने उनका लेखा-जोखा नहीं रखा जाता था; और न व्यक्तियों से जबरदस्ती बेगार ली जाती थी। राजकीय भूमि, व्यय के हिसाब से चार भागों में बाँट दी गयी थी—एक भाग सरकारी कार्यों और राज्य की तरफ से की जाने

५१—Watters, vol. I, p. 176.

५२—हर्षवर्द्धन, पृष्ठ १७८।

५३—Epigraphia Indica, vol. I, p. 75.

५४—Watters. vol. I, p. 176—"Taxation being light, and forced service being sparingly used, every one keeps to his hereditary occupation and attends to his patrimony".

वाली पूजा-कार्य पर व्यय होता था; दूसरा भाग राज्य के प्रमुख अधिकारियों का वेतन व पुरस्कार आदि देने के लिये था; तीसरा भाग ऊंचे प्रकार के विद्वानों को पुरस्कृत करने के लिये था; और चौथा भाग विभिन्न धर्मों को दान देकर पुण्य अर्जित करने के लिये था।[५५] ह्वेनसांग का यह विवरण इस बात का साक्षी है कि हर्ष का शासन एकतंत्रीय होते हुये भी किसी प्रकार निरंकुशतापूर्ण न था, और जनता की उन्नति, समृद्धि, सुरक्षा और शांति शासन का प्रथम और प्रमुख ध्येय था।

राजधानी कन्नौज का जो विवरण ह्वेनसांग उपस्थित करता है, उससे भी हर्ष के शासन की सुव्यवस्था, सुरक्षा और समृद्धि का अनुमान किया जा सकता है : "राजधानी (कन्नौज) के पश्चिम-तरफ गंगा नदी बहती है। यह नगर बीस ली (पांच-मील) से भी अधिक लम्बा और चार-पांच ली (सवा मील) के लगभग चौड़ा है। उसकी किलेबन्दी बहुत मजबूत अथवा सुदृढ़ थी, और उसमें जगह-जगह विशाल-भवन व महल बने हुये थे। उसमें अनेक सुन्दर उद्यान और स्वच्छ जल के सरोवर वर्तमान थे जिनमें देश-विदेशों की विचित्र वस्तुएँ संग्रहीत थीं।

५५—Ibid, "As the Government is generous official requirements are few, families are not registered, and individuals are not subject to forced labour contributions. Of the royal land there is a fourfold division : one part is for the expenses of government and state worship, one for the endowment of great public servants, one to reward high intellectual eminence, and one for acquiring relegious merit by gifts to the various sects".

नगरवासी समृद्ध थे और बहुत से परिवार बड़े धनी थे। फल-फूलों की कमी न थी। लोग सुसंस्कृत थे और चमकीले रेशम के वस्त्र पहिना करते थे। उनमें विद्या और कला के प्रति अनुराग था, और उनके तर्क सुस्पष्ट और मर्मपूर्ण होते थे।

राजधानी में एक सौ से भी अधिक बौद्ध-विहार थे जिनमें लगभग दस हजार बौद्ध-भिक्षु रहा करते थे।

देव-मन्दिरों की संख्या दो सौ से भी अधिक थी और अबौद्धों की संख्या कई हजार थी।"[५६]

ह्वेनसांग के अनुसार प्रतापी सम्राट् हर्ष ने जिसे वह शीलादित्य नाम से अलंकृत करता है, प्रथम ६ वर्षों के निरंतर युद्धों के बाद तीस वर्ष तक शांति से शासन किया था। इस वृत्त के अनुसार हर्ष का राज्यकाल ६१२ से प्रारम्भ हुआ (वैसे अभिषेक उसका ६०६ ई० में हो चुका था) और तीस वर्ष के शासन के बाद अर्थात् लगभग ६४७-४८ ई० में समाप्त हो गया। अतः प्रकट है कि ६४७ ई० के अंत अथवा ६४८ ई० के प्रारम्भ में हर्ष परलोक सिधार गया था।*

५६—Watters, vol. I, pp. 340-341, ह्वेनसांग ने गंगा नदी को कन्नौज के पश्चिम में बताया है, लेकिन गंगा कन्नौज के पूरब तरफ है (Ibid, p. 342—अन्य प्राचीन लेखकों ने गंगा को कन्नौज के पूरब में ही बतलाया है। कन्नौज के पश्चिम तरफ गंगा नदी की सहायक काली नदी बहती है, शायद ह्वेनसांग ने भूल से काली नदी को ही गंगा समझ लिया हो)।

*—Watters, I, pp. 346-347. श्री वि. स्मिथ, हर्ष की मृत्यु की तिथि ६४६ ई० के अन्त अथवा ६४७ के प्रारम्भ में रखते हैं (Early History of India, IIIrd ed., p. 352)। श्री पान्निकर ६४७ ई० में रखते हैं (Harsha P. 20)। लाईफ के अनु-

हर्ष कोई उत्तराधिकारी न छोड़ गया था (वह निःसंतान था), इसलिये उसकी मृत्यु के साथ उत्तरी-भारत की राजनीतिक सुव्यवस्था, सुरक्षा और शांति भी भंग हो चली और देश में पुनः अराजकता फैल उठी। इसी समय भकयंर दुर्भिक्ष भी पड़ा जिससे लोगों की श्री और समृद्धि भी समाप्त हो गयी, बस्तियां उजड़ गयीं और लोग असहाय हो चले।*

सार हर्ष की मृत्यु लगभग ६५५-६५६ में हुई (Life, Beal, p. 186)।

*—Siladitya-raja died and India was Subjected to famine and desolation, as had been predicted (Life, p. 156).

अध्याय ४

हर्ष का विद्यानुराग

शिक्षा–साहित्य और कला

दिग्विजेता हर्ष, अश्वमेध-पराक्रमी गुप्त-सम्राट् 'कविराज' समुद्रगुप्त की भाँति ही एक योद्धा और सेनानी होने के साथ-साथ एक अत्यन्त विद्यानुरागी, कवि और नाट्यकार, ज्ञान का संरक्षक और विद्वानों का प्रश्रयदाता था। तलवार और कलम दोनों उसके हाथ के अलंकार थे। योद्धा और विद्वान् दोनों उसके राजदर्बार की शोभा बढ़ाते थे। ग्रन्थकार के रूप में हर्ष ने तीन नाटकों की रचना की थी—प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानंद तथा अष्टमहा श्री चैत्य संस्कृत स्तोत्र (इसमें ५ श्लोकों में आठ महान् चैत्यों की स्तुति गायी गयी है) और सुप्रभास्तोत्र (२४ श्लोकों में बुद्धदेव की स्तुति की गयी है)। इनके अतिरिक्त वह एक व्याकरण-ग्रन्थ का रचयिता भी माना जाता है, जो मिलता नहीं है। संस्कृत के पद्य-संग्रहों में भी हर्ष द्वारा रचित कुछ पद्य-रचनाएँ पाई जाती हैं। बाँसखेड़ा अभिलेख में हर्ष के जो हस्ताक्षर हैं, उससे यह अनुमान किया जाता है कि हर्ष 'चित्रलिपि' लिखने में भी कुशल थे। श्री वि० स्मिथ के अनुमान में बाँसखेड़ा अभिलेख में हर्ष के जो हस्ताक्षर हैं, वे संभवतया सम्राट् के स्वहस्त लिखित हस्ताक्षरों के आधार पर ही लिपिकार द्वारा उस पर खोदे गये थे।[1]

१—Early History of India, IIIrd ed. p. 343 Note. 1. और—Gray-Vasvadatta Pub. 1913, p. 5.

हर्ष के ग्रन्थकार होने में कतिपय विद्वानों ने शंका प्रकट की है। रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द नाटक के रचयिता महाराज हर्ष या हर्षदेव कहे गये हैं। नाटकों के रचयिता हर्ष कन्नौज के पुष्यभूति सम्राट् हर्ष शीलादित्य ही हैं, यह ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है। भारत के प्राचीन इतिहास में हर्ष नाम के तीन राजा हो गये हैं— (१) कश्मीर का निरंकुश राजा हर्ष (१०८९–११०१ ई०) (२) धार का हर्ष, भोज का दादा (९४७–९७२ ई०) और (३) उज्जैन का हर्ष विक्रमादित्य जिसे मालवा के यशोधर्मन से मिलाया जाता है। इन तीन में पहले दो तो दामोदरगुप्त के आधार पर तिथि-क्रम के भेद के कारण स्वीकार नहीं किये जा सकते। दामोदरगुप्त कश्मीर के राजा जयापीड (७७९–८१०) का एक मंत्री था। उसने अपने एक ग्रन्थ 'कुट्टिनीमत' में रत्नावली नाटक की कथावस्तु का उल्लेख किया है और कहा है कि इस नाटक के रचयिता एक राजा थे। डा० कीथ(Dr. Keith) के अनुसार महाकवि माघ (लगभग ७०० ई०) नागानन्द नाटक से परिचित थे।[२] अतः स्पष्ट है कि रत्नावली और नागानन्द आदि नाटकों का रचयिता १० वीं और १२ वीं शती में हुये हर्ष नहीं हो सकते। ग्रन्थकार राजा हर्ष की तिथि निश्चय ही दामोदरगुप्त से पूर्व अथवा ८ वीं शती से पूर्व होनी चाहिये। तीसरे हर्ष विक्रमादित्य के सम्बन्ध में राज-तरंगिणी के रचयिता कल्हण का कहना है कि इस राजा का 'हर्ष' नाम गौण था और उसकी मुख्य उपाधि 'विक्रमादित्य' थी। उक्त तीनों नाटकों में ग्रन्थकार का नाम केवल हर्ष मिलता है, अतः डा० त्रिपाठी और श्री पानिक्कर का यह कथन सर्वथा मान्य प्रतीत होता है कि यदि हर्ष-विक्रमादित्य उक्त नाटकों का ग्रन्थकार होता तो यह सम्भव नहीं

२—Classical Sanskrit, Literature, pp. 54-55. History of Kanauj, p. 180.

लगता कि वह नाटकों की प्रस्तावना में अपनी यशःपूर्ण उपाधि का प्रयोग करना भूल जाता । फलतः उक्त तीनों हर्ष नामधारी राजा रत्नावली आदि के रचयिता नहीं थे, इसलिये आठवीं शती से पूर्व जिस राजा हर्ष ने उन नाटकों की रचना की थी वे कन्नौज के पुष्यभूति सम्राट् हर्ष अथवा हर्षदेव ही हो सकते हैं ।[3]

हर्ष के ग्रन्थकर्त्ता होने पर वस्तुतः मध्ययुग के कुछ टीकाकारों ने शंकाएँ उत्पन्न कीं, और उसके नाटकों को उसके एक राजकवि धावक द्वारा रचा हुआ बतलाया । ग्यारहवीं शती के कश्मीर के एक पण्डित मम्मट ने अपने काव्य-प्रकाश नामक ग्रन्थ में काव्य-कला से होनेवाले लाभों का उल्लेख करते हुये कहा है, कि कविता से यश और धन प्राप्त होते हैं (काव्यं यशसेऽर्थकृते); और इसके प्रमाण में उदाहरण देते हुए

३—श्री पानिक्कर हर्ष-विक्रमादित्य का उल्लेख करते हुये कहते हैं— "The author of the plays is uniformely spoken of as Harsha and it is certainly unlikely that a highly prized title like that of Vikarmaditya would have been consisently left out if the author possessed that name also."

इसी तरह डा० त्रिपाठी भी कहते हैं—Regarding the claims of the third Harsa....we may say that according to kalhana, Harsa was only his secondary name, and Vikarmaditya was his title. It appears, therefore, improbable that if this Harsa had been the author of these plays, he would have omitted to mention the prized title of Vikarmaditya in the prastavana." (History of kanauj, pp. 180-181).

उसने कहा कि कालिदास को यश प्राप्त हुआ और धावक को श्री हर्षदेव से धन मिला।' मम्मट के इस कथन का १६वीं १७वीं शती के टीकाकार नागोजी और परमानन्द ने यह अर्थ लगाया कि धावक नाम के एक कवि ने श्री हर्ष के नाम से रत्नावली नाटक लिखकर बहुत-सा धन प्राप्त किया था। इन टीकाकारों का यह कथन, निःसंदेह उनके मस्तिष्क की भ्रमपूर्ण कल्पना-प्रतीत होती है। मम्मट के काव्यप्रकाश के कथन में, जैसा कि श्री पान्निकर कहते हैं, कोई ऐसी बात नहीं है जिससे नागोजी का धावक द्वारा हर्ष के नाम पर नाटक लिखना प्रमाणित हो सके। मम्मट ने केवल यही दर्शाया है कि काव्य से कालिदास को यश और धावक को धन प्राप्त हुआ। साथ ही, ये टीकाकार हर्ष के एक हजार वर्ष बाद हुये थे, इसलिये उनका कथन जो कि केवल जनश्रुति के आधार पर है, ऐतिहासिक वृत्त के रूप में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिये।[४]

४—**काव्य प्रकाश के कथन पर नागोजी के भाष्य की आलोचना करते हुये श्री पानिकर लिखते हैं**—"There is nothing either in the passage or in the commentary that Justified the elaborate Stricture of Nagoji Bhatta. Nagoji, a very late commentator leaving both the original and earlier commentaries behind, explained the passage (kavyam yasase arthakrite, as–kalidasadinamiva yasah Sri Harsader Dhavakadinamiva dhanam) by saying that it is possible to earn money as Dhavaka did by selling the authorship of his works to Harsha.

This statement has certainly no value in as far as it was written nearly 1000 years after-

धावक नाम से संस्कृत साहित्य में कोई कवि नहीं मिलता। बुलर के अनुसार मम्मट के काव्यप्रकाश की कुछ हस्तलिपियों में धावक की जगह बाण का नाम मिलता है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि धावक नाम भूल से बाण के लिये ही प्रयुक्त हुआ या लिखा गया है।[५] ११ वीं शती के एक कवि सोड्ढल का कहना है कि हर्ष ने बाण को

---

wards and based entirely on hearsay" (Shri Harsha, P. 68)।

हर्ष के कवि होने पर संदेह करनेवाले उत्तर-मध्यकालीन(१६वीं-१७वीं शती) आलोचकों को तूल देना डा० त्रिपाठी भी निरर्थक समझते हैं; वे लिखते हैं—"....Almost all the later doubting authors belong to the 16th or 17th century A. D., and this distance in time from Harsa considerably lessens the weight of their authority."

मम्मट के कथन पर प्रकाश डालते हुये डा० त्रिपाठी आगे लिखते हैं—"....It is not clear from Mammata—probably the original source of the later authors–whether the money received by the poets of Harsa's court was an act of pure royal patronage, or was of the nature of a price for selling their authorship.

The truth of the whole matter is that although we can not be oversanguine about Harsa's authorship...., there is nothing improbable in such a view" (History of Kanuj, p. 187)

५—Detailed report of a Tour in search of Sanskrit Manuscripts in kashmir 1877. Buhler, p. 69

एक सौ करोड़ स्वर्णमुद्रा देकर सम्मानित किया था (सम्पूजितः कनक-कोटि-शतेन)। ये मुद्राएँ हर्ष द्वारा निःसंदेह उसके पाण्डित्य के पुरस्कार-स्वरूप दी गयी होंगी न कि अपने नाम से नाटक लिखाने का मूल्य चुकता किया गया था। डा० कीथ और डा० त्रिपाठी का बहुत सही कहना है कि बाण की शैली और भाषा को देखते हुये रत्नावली और अन्य दो नाटकों को उसका रचा हुआ समझना गलत होगा। हर्ष-चरित और कादम्बरी की रचना पांडित्यपूर्ण और शैली अत्यन्त जटिल है जब कि रत्नावली आदि नाटकों की शैली सरल और आलंकारिक चमत्कारों आदि से रहित है; और साहित्यिक दृष्टि से उनका स्तर बाण के काव्यों से कोई समानता नहीं रखता।[६]

श्री राजशेखर की सारंगधर-पद्धति के एक कथन के आधार पर यह भी कल्पना की जाती है कि प्रियदर्शिका आदि तीन नाटकों को भास ने रचा था और उन्हें अपने संरक्षक हर्ष को बेच दिया था। इस भास को धावक से भी मिलाया जाता है जो असंगत है। धावक नाम जैसा कि बुलर का कहना है, भूल से बाण के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। तिथि-क्रम को देखते हुये भास को हर्ष का समकालीन समझना भी गलत है। भास हर्ष से बहुत पूर्व हो चुका था। भास का कालिदास ने उल्लेख किया है जो सामन्यतः चौथी शती के उत्तरार्द्ध और पाँचवीं शती के प्रारम्भिक काल में हुआ माना जाता है जब आर्यावर्त्त पर यशस्वी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य शासन करते थे। साहित्यिक दृष्टि से भी भास के नाटकों और हर्ष के नाटकों में कोई मेल नहीं है। अतः राजशेखर का कथन कि भास ने प्रियदर्शिका आदि नाटकों को रचकर उन्हें सुवर्ण के बदले हर्ष को दे दिया था, अप्रमाणिक और कल्पनिक है।[७]

६—The Sanskrit Drama by Keith, p. 171. History of Kanauj, Dr. Tirpathi, pp. 185-186.

७—Shri Harsh, K. M. Panikkar. p. 67

दूसरी तरफ, हर्ष का कवि और नाटकों का ग्रन्थकार होने के संबंध में हमें जो प्रमाण मिलते हैं वे अधिक विश्वसनीय और सारपूर्ण हैं। तीनों नाटकों की प्रस्तावना में एक स्वर से हर्ष को 'निपुण कवि' कहा गया है—"श्री·हर्षो निपुणः कविः"। बाण ने अनेक स्थलों पर हर्ष की प्रज्ञा और कवित्व शक्ति की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है (प्रज्ञाया शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः)। हर्षचरित के प्रारम्भ के अठारहवें श्लोक में बाण ने जिस 'आढ्यराज' के उत्साहपूर्ण गुणों (साहित्यिक तथा राजनैतिक) का उल्लेख किया है उससे अभिप्राय श्री हर्ष शीलादित्य से ही समझा गया है।[८] एक अन्य स्थल पर बाण ने कहा है कि हर्ष काव्य और कथागोष्ठी में भाग लिया करते थे और जो अमृत वे निःसृत करते थे उसके वे ही स्रोत थे।* सातवीं शती के उत्तरार्द्ध (६७१–६९५ ई०) में इत्सिंग नामका जो चीनी यात्री भारत आया था, उसने भी हर्ष शीलादित्य की साहित्यिक प्रतिभा का उल्लेख किया है, और कहा है कि शीलादित्य ने बोधिसत्व जीमूतवाहन की कथा को लेकर एक काव्य की रचना की थी (अभिप्राय नागानन्द नाटिका से है) और नृत्य तथा वाद्य के साथ उसे मंच पर अभिनीत भी करवाया था।[९]

८—आढ्यराज कृतोत्साहैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि।
जिह्वान्तः कृष्यमाणेव न कवित्वेवप्रवर्तते ॥ १८ ॥

देखिये— Columbia University Indo-Iranian Series, vol. X. p. XI, note 18. Harsha, Mukerji, p. 157.

*—Hc. C. T. p. 65 and p. 58. Indo-Iranian Series, Columbia, vol. X. Intro. p. XI.

९—इत्सिंग का उल्लेख करते हुये वॉटरस लिखता है; "According to this author also Siladitya put together the incidents of the cloud-riding (Jimuta-vahana)

पूर्व और उत्तर-मध्ययुग में भी हर्ष ग्रन्थकार और कवि के रूप में सुप्रसिद्ध थे। ११ वीं शती के एक कवि सोड्ढल (कोनकंण) ने अपनी उदय-सुन्दरी-कथा में श्री हर्ष को, विक्रमादित्य, मुञ्ज और भोजादि नृपों के सामान 'कवीन्द्र' कहा है और उसे वाणी अथवा काव्य में रस लेने-वाला 'गी हर्ष' घोषित किया है जिसने बाण को एकसौ करोड़ स्वर्ण से पुरस्कृत किया था।[१०]

आठवीं-नवीं शती के कश्मीर के राजकवि दामोदरगुप्त ने रत्नावली नाटक को एक राजा की कृति बतलाया है। उक्त राजा जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं श्री हर्ष शीलादित्य ही हो सकता है।

१३ वीं शती के कवि जयदेव ने भी हर्ष को भास और कालिदास,

Bodhisattva giving himself up for a Naga, into a poem to be sung, that is, he composed the "Naga-nanda." An accompaniment of instrumental music was added, and the king had the whole perforned in public, and so it became popular" (Watters vol I, P. 351. और देखिये—I-Tsing, by Takakusu, pp. XXV-XXVIII-IV and pp. 163-164.

१०—बाणभट्टाध्यासितमधिष्ठितं च कालिदासादि महाकविभिः
कवीन्द्रैश्च विक्रमादित्य श्री हर्ष मुञ्ज भोजदेवादि भूपालैः।
श्री हर्ष इत्यवनिवर्तितु पार्थिवेषु
नाम्नैव केवल मजामत वस्तुतास्तु
गीर्हर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा
सम्पूजितः कनककोटि-शतेन बांण।

देखिये—Gaekwad's oriental series, No. 11, Baroda 1920, p. 2.

बाण, मयूर और चोर आदि के साथ 'कवियों' की पंक्ति में स्थान दिया है।[११]

१७वीं शती के एक दार्शनिक मधुसूदन सरस्वती ने अपनी टीका भावबोधिनी में बाण और मयूर के प्रश्रयदाता हर्ष को कवि और रत्नावली आदि का रचयिता कहा है, यद्यपि उसने भूल से हर्ष को मालवा का राजा बतलाया है जिसकी राजधानी उज्जैन थी।[१२]

सुभाषित रत्नभांडागार में एक स्थल पर श्री हर्ष का नाम माघ, मयूर कालिदास, भवभूति, बाण और दण्डी आदि के साथ कवियों में गिनाया गया है।[१३]

इन उद्धरणों के अलावा बाँसखेड़ा और मधुबन के अभिलेखों से भी हर्ष के 'कवि' होने का अनुमान किया जाता है। कतिपय विद्वानों का मत है कि उक्त अभिलेखों में जो पद्य अत्यन्त मर्मपूर्ण भावों के

११—देखिये 'Prasanna Raghava-Jaydeva by Pranjpe and Panse, Act. I, p. 10, stanza 22—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरः।
भासो हासः कविकुल गुरुः कालिदासोविलासः
हर्षो हर्षः हृदयवसतिः
पञ्च वाणश्च बाणः।
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥

१२—Indian Antiquary, II, pp. 127-128.

१३—माघश्चोरो मयूरो मुररिपुरपुरो मारविः सारविद्यः
श्री हर्षः कालिदासः कविरथ भवभूत्याह्वयोभोजराजः।
श्री दण्डी डिण्डिमाख्यः
श्रुतिमुकुटगुरुर्भल्लटो भट्ट बाणः ख्याताश्चान्ये सुबन्धुवांदय इह,
कृतिभिर्विश्वमाह्लादयन्ति ॥ ७१ ॥

साथ शत्रुओं द्वारा 'राज्य' की हत्या का उल्लेख करते हैं, उनकी रचना संभवतया हर्ष ने स्वयं की थी।[१४]

डा० कीथ के अनुसार हर्ष के रचे तीनों नाटकों की शैली, भाव और विचार एक जैसे हैं, जो इस बात के साक्षी हैं कि इन तीनों के रचयिता एक ही 'कवि' थे और वह स्वयं श्री हर्ष थे।[१५]

अन्त में श्री पानिक्कर के साथ हम यही कह सकते हैं कि हर्ष शीलादित्य के उच्च और त्याग तथा शीलपूर्ण चरित्र को देखते हुये यह कल्पना असंगत प्रतीत होती है कि कवियों में अपना नाम लिखाने के लिये हर्ष ने सुवर्ण देकर अपने नाम पर काव्यों की रचना करवायीं

१४—Coulanabia University Ind Iranian series, vol. 10, p. XliV—Harsha, Mukerji, p. 158. "The inscriptions on both the Banskhera and Madhuban plates....are evidentey his own composition".

देखिये—

५—तिशयित पूर्व्वराजचरितो देव्याममलयशोमत्याम् श्री यशोमत्यामुत्पन्नः परम सौगतस्सुगत इव परहितैकरतः परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री राज्यवर्द्धनः। राजानो युधि-दु—

६—ष्टवाजिनः इव श्रीदेवगुप्तादयः कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखास्सर्व्वे समं संयताः। उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधाङ्कृत्वा प्रजानांप्रियं प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः। तस्या—(बांसखेड़ा ताम्रपत्र) इसी तरह का भाव मधुबन अभिलेख के ६ठें और ७वें पद्य में व्यक्त किया गया है।

१५—The Sanskrit Drama by keith, pp. 170-171. Harshavardhana by Ettingahausen, p. 102.

थी।[१६] निष्कर्षतः, उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर श्री हर्ष को कवि और तीन नाटकों का रचयिता स्वीकार करने में इतिहास के विद्वानों को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये। प्राचीन और मध्ययुग के अनेक राजा (समुद्रगुप्त, विक्रमादित्य, मुञ्ज, भोज आदि) कवि और ग्रन्थकर्त्ता हो चुके हैं; इसलिये राजा होते हुये हर्ष कवि कैसे हो सकते थे, ऐसा सोचकर संदेह करना भी संगत नहीं होगा।

हर्ष के नाटकों की मध्ययुगीन आलोचकों ने बहुत प्रशंसा की है। जयदेव ने हर्ष को भास, कालिदास, मयूर और वाण आदि के समकक्ष स्थान दिया है, किन्तु वर्त्तमान आलोचकों का कहना है कि नाट्यकला की दृष्टि से हर्ष कालिदास के पासंग में नहीं बैठते और न काव्य-कला की दृष्टि से वे वाण अथवा भवभूति की जैसी प्रगल्भता और सौंदर्यात्मकता को पहुँचते हैं। रत्नावली और प्रियदर्शिका कालिदास के मालविकाग्निमित्र-नाटक के अनुरूप हैं। इन दोनों नाटकों में कौसाम्बी के राजा उदयन और उसकी प्रेम कहानी को चित्रित किया गया है। नाटकों के पात्र-पात्रियों और परिस्थिति आदि के चित्रण में भी हर्ष ने कालिदास से प्रेरणा ली है। तीसरा नाटक नागानन्द उक्त दोनों नाटकों से भिन्न है। इसमें बौद्ध-नायक जीमूतवाहन के रूप में बौद्ध-धर्म का त्याग और बलिदान का महान् आदर्श उपस्थित किया गया है। जीमूतवाहन एक नाग की रक्षा के लिये उसके बदले उदारता, सहृदयता और

१६—"That Harsha Siladitya would have bought the works of other authors is contrary to known and notorious facts with regard to his character. We can, therefore, be reasonably certain that Harsa wrote these plays in spite of what critics may say". (Shri Harsha, Panikkar, pp. 68-69).

वीरतापूर्वक अपना शरीर गरुड़ को अर्पण कर देता है। जीमूतवाहन निःस्वार्थ त्याग और सेवा तथा करुणा का अवतार है। इस नाटक की रचना से प्रकट होता है कि हर्ष यद्यपि काव्य-रचना की दृष्टि से बहुत ऊँचे नहीं उठ सके हैं, लेकिन भावों की अभिव्यक्ति और चरित्र-चित्रण में वे बहुत कुशल और निपुण थे।[१७] काव्य-प्रेमी और ग्रन्थकार होने

१७—**रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द पर श्री पानिकर की सम्मति**—"From the purely artistic point of view it can not be said that either Ratnavali or Priyadarsika have any thing distinctive in them to entitle its royal author to a considerable place in Indian literature. The lyrical quality of the verses in them are of a very high order and this alone perhaps constitutes their merit to be classed among minor classics of India. (Shri Harsha, pp. 69-70).

Harsha in his treatment of the story (of Jimutavahana in Naganand) displays a singuler power of description and narration. The scenes are vivid and in some places they reach the very height of tragedy". (Ibid, p. 72).

डा० त्रिपाठी की सम्मति में—"....The language of the plays is simple and unfettered by any artificiality and ornamentation. The plays are in no sense productions of a high order....".

(History of Kanauj, p. 186).

श्री गौरीशंकर चटर्जी की सम्मति है—"हर्ष अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण बड़ी कुशलता के साथ करते हैं और साथ ही यह भी प्रकट करते

के साथ हर्ष जैसा कि बाण से मालूम होता है संगीत और ललितकलाओं के भी प्रेमी और गुणज्ञ तथा ज्ञाता थे।*

विद्यानुरागी हर्ष पंडितों और विद्वानों का भी परम आश्रयदाता था। ह्वेनसांग के अनुसार राजकीय-भूमि व्यय के आधार पर चार भागों में बाँट दी गयी थी जिनमें से एक भाग महान् पंडितों और विद्वानों को पुरस्कार देने के निमित्त था। इससे प्रकट है कि हर्ष के समय में राज्य की ओर से बौद्धिक-क्षेत्र में काम करनेवालों को बहुत बढ़ावा और सम्मान दिया जाता था। हर्ष को काव्यों के सुन्दर संग्रह कराने का भी शौक था। इत्सिंग के अनुसार हर्ष ने एक बार सुन्दर-श्रेष्ठ कविताओं का संग्रह संकलित करवाया था। इस संग्रह में ५०० श्लोक जातकमाला से थे।[१८]

हैं कि प्रेम की भावना की अभिव्यक्ति में वे सिद्धहस्त थे। साथ ही मानव-हृदय के अन्य गंभीर उदार भावों के चित्रण करने में भी वे कम सफल नहीं रहे।

....हर्ष के पास वर्णनात्मक शक्ति की भी कमी नहीं है। कला, प्राकृतिक पदार्थों तथा मानव भावनाओं के जो वर्णन उन्होंने किये हैं वे सराहनीय हैं। भाषा का प्रभाव उन्मुक्त है उसमें कहीं कृत्रिमता नहीं आने पाई है। अलंकारों का प्रयोग वे बड़ी कुशलता के साथ और प्रभावोत्पादक रूप में करते हैं। उनके नाटकों की संस्कृत सरल और सुंदर है। सब बातों पर दृष्टि रखते हुए हम कह सकते हैं कि प्राचीन संस्कृत कवियों में हर्ष को एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है (हर्षवर्धन; पृष्ठ—१५८-१५९)।

*—'सर्वविद्यासंगतिकगृहमिवसरस्वत्या कन्यान्तः पुरमिव कलानां' हर्षचरित, पृष्ठ—१२०, हर्षवर्धन, गौरीशंकर चटर्जी, पृष्ठ—१६०

१८—Watters, vol. I, p. 351—"As to his literary tastes we learn from I-ching that the king (Harsha) once called for a collection of the best poems written of the compositions sent in to him 500 were found to be strings of Jatakas (Jatakamala)".

हर्ष की काव्य-रसिकता और विद्या-नुराग का यह दूसरा बड़ा प्रमाण है। निःसंदेह हर्ष गुणी तथा गुणी-पारखी दोनों थे और उनके संरक्षण में विद्या तथा विद्वानों दोनों ने उत्साह और बढ़ावा प्राप्त किया। हर्ष के राजदरबार की शोभा बढ़ानेवाले तीन उच्चकोटि के कवि और साहित्यिकों का ही नाम हमें ज्ञात है, यद्यपि अनुमान किया जा सकता है कि राजाश्रय प्राप्त करनेवाले छोटे-बड़े कई और विद्वान् भी रहे होंगे। हर्ष के प्रश्रय में रहनेवाले तीन कवियों के नाम सुभासितरत्नभांडागार के नीचे लिखे श्लोक में उद्धृत हैं—

"अहो प्रभावो वाग्देव्या मन्मातङ्गदिवाकरः।
श्री हर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥"[१९]

अर्थात् सरस्वती का ऐसा प्रभाव है कि नीच जाति का दिवाकर भी बाण और मयूर के समान हर्ष की सभा का सदस्य बना।

बाण हर्ष के दरबार का प्रमुख कवि था, यह निर्विवाद है। हर्ष-चरित और कादम्बरी, बाण के दो प्रमुख ग्रन्थ हैं। हर्षचरित में हर्ष का जीवन-चरित दिया गया है। लेकिन बाण ने अपने संरक्षक के चरित्र का सम्पूर्ण-विवरण देने से पूर्व ही इसे समाप्त कर दिया है, जिससे यह ग्रन्थ अधूरा रह गया है। हर्षचरित की विशेषता उसका कल्हण की राज-तरंगिणी के समान एक ऐतिहासिक ग्रन्थ होने में है। हर्ष के जीवन और चरित्र के संबंध में हमें इस ग्रन्थ से यथेष्ठ प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध होती है। कादम्बरी एक औपन्यासिक रचना है। कहते हैं बाण इस ग्रन्थ को अधूरा छोड़ गया था। कादम्बरी के अवशिष्ठ भाग को बाण के सुयोग्य बेटे भूषणभट्ट ने पूरा किया। सराहनीय तो यह है कि भूषणभट्ट ने जितना अंश कादम्बरी में जोड़ा है वह शैली और रचना-कौशल में बाण के प्रकार

१९—Subhasitaratnabhandagara, Parab, 5th ed., Bombay, 1911, p. 37, stanza 37.

से भिन्न नहीं हुआ है। दोनों ग्रन्थ गद्य में हैं, लेकिन उनकी लेखन-शैली काव्य के प्रकार की है—भेद इतना ही है कि भाषा को छुंद-बद्ध नहीं किया गया है। बाण की भाषा, शब्दों पर अधिकार और कल्पना की सूझ सभी अद्वितीय हैं। लेकिन उसके वाक्यों की रचना अत्यन्त विस्तृत और जटिल है और भाषा बहुत ही क्लिष्ट है, जिस कारण उसे कालिदास के समान ऊँचा स्थान नहीं प्राप्त हो सका है।[२०]

२०—बाण पर श्री पानिकर की सम्मति—"He (Bana) is acknowledged to be the greatest romancer in Sanskrit. His Harsa-carita together with Hari sena's life of Samudra Gupta and Kalhana's Raja-tarangani form the best known trio of historic compositions in Sanskrit....That he was a writer of extraordinary ingenuity with an unrivalled command of words and a marvellous imagery no one will doubt. But his method of description is so ornate and his sentences so involved that his pre-eminence acknowledged by all pundits will not so easily be granted these days....

With all his faults it must, however, be admitted that Bana is among the immortals of Sanskrita literature. Kadambari in spite of its over-decoration is a well-told romance which will always be read and appreciated by Sanskrit scholars. The ubiquitous use of slesa, which makes any translation into English impossible, is not a mere exhibition of

हर्षचरित और कादम्बरी के अलावा बाण की एक अन्य रचना चंडी-शतक भी कही जाती है।[२१]

मयूर हर्ष के दरबार का दूसरा प्रमुख कवि था। कहा जाता है कि मयूर बाण का श्वसुर था। 'नवसाहसांकचरित' के अनुसार बाण और मयूर काव्य-रचना में एक-दूसरे से प्रतिद्वंदता रखते थे। कहते हैं मयूर ने अपनी रूपवती कन्या के सौंदर्य का सविस्तार वर्णन किया, जिस कारण उसे कुष्ट रोग हो गया था। मयूर ने तब एकसौ श्लोकों में सूर्य-शतक रचकर सूर्य की आराधना की और कुष्टरोग से मुक्त हो गया। कहते हैं मयूर के सूर्य-शतक से ही प्रेरित होकर बांण ने चंडी-शतक की रचना की थी। मयूर की दो रचनाएँ और बतलायी जाती हैं—मयूरशतक और आर्यमुक्तमाल। किन्तु कुछ विद्वानों के मत में सूर्य-शतक और मयूर-शतक दो भिन्न रचनाएँ नहीं हैं—लेकिन वस्तुतः एक ही रचना के दो नाम हैं।[२२]

तीसरे कवि मातंग दिवाकर (यह जाति का चांडाल था) के संबंध में हमें कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता, सिवाय इसके कि वह

---

pedantry which it seems to be to foreigner, but a highly interesting and enjoyable form of poetic expression to which there is no equal in European languages". (Shri Harsha, pp. 73-74).

२१—Classical Sanskrit Literature, Dr. Keith, p. 120.

२२—The Sanskrit poems of Maura, by Quackenbos (Coulumbia University series, vol. 9, pp. 9-10). Classical Sanskrit Literature, Krishnamachari, pp. 316-317.

बाण और मयूर के समान लब्धप्रतिष्ठित कवि था, जिस कारण हर्ष की विद्वत्मंडली में उसे भी सम्मानित स्थान प्राप्त हुआ। डा० कीथ के अनुसार इस कवि के कुछ एक श्लोक संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध हैं।[२३]

संभवतया 'हरिदत्त' नाम के एक अन्य कवि को भी हर्ष का सम्मानप्रद प्रश्रय प्राप्त था।[२४]

हर्ष के युग के एक महान् कवि भर्तृहरि भी माने जाते हैं, लेकिन वे उपरोक्त तीन कवियों की तरह राजप्रश्रय में नहीं थे। संस्कृत साहित्य में कालिदास के बाद लोक-प्रियता में दूसरा स्थान भर्तृहरि को ही प्राप्त है।[२५]

इस युग में संस्कृत के साथ साहित्यिक-भाषा के रूप में प्राकृत का भी प्रचलन था और उसका उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा था।[२६]

विद्यानुरागी हर्ष के शासन में पंडितों और विद्वानों को जो प्रतिष्ठा और प्रश्रय प्राप्त हुआ उससे शिक्षा की उन्नति और प्रसार में भी बहुत बढ़ावा मिला। ह्वेनसांग ने लिखा है कि 'चूंकि विद्या और प्रतिभा का राज्य बहुत आदर करता था; जनसाधारण में भी विद्वानों का बहुत मान और आदर था, अधिकारी सभी पंडितों का खयाल रखते थे, इसलिये लोगों में विद्याअर्जन करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ी हुई थी। फलतः शास्त्र और विज्ञान के जिज्ञासु व्यक्ति, थकान और श्रम की चिंता न कर विद्या की खोज में प्रवृत्त हो सैकड़ों मील की यात्रा करके शिक्षा-केन्द्रों में पहुँचा करते थे। ये जिज्ञासु गरीब होने पर भी विद्या के अर्जन में त्रुटि नहीं आने देते

२३—Classical Literature, Dr. Keith, pp. 120-121.

२४—Harsha, Mukerji, p. 150—Epigraphia-Indica, vol. I, p. 180.

२५—Shri Harsha, Panikkar, p. 75.

२६—Ibid.

थे और भीख मांगकर अपना काम चला लेते थे। गरीब होने की उनको कोई चिंता न थी—वे तो केवल सच्चे ज्ञान की उपलब्धि को ही सबकुछ समझते थे। समाज में ऐसे ही लोगों का आदर-मान था, और जो लोग धनी और समृद्ध होकर केवल विलास का आलसमय जीवन व्यतीत करते थे उनका समाज में कोई आदर और सम्मान नहीं होता था और उन्हें बुरा समझा जाता था।[२७] इसमें संदेह नहीं कि जनता और

२७—"Now as the state holds men of learning and genius in esteem, and the people respect those who have high intelligence, the honours and praises of such men are conspicuously abundant, and the attentions private and official paid to them are very considerable. Hence men can force themselves to a thorough acquisition of knowledge. Forgetting fatigue they "expatiate in the arts and sciences"; seeking for wisdom while "relying on perfect virtue" they "count not 1000 li a long Journey". Though their family be in affluent circumstances, such men make up their minds to be like the vagrants, and get their food by begging as they go about. With them there is honour in knowing truth (in having wisdom), and there is no disgrace in being destitute. As to those who lead dissipated idle lives, luxurious in food and extravagant in dress, as such men have no moral excellences and are without accomplishments, shame and disgrace

राजा के इस रुख से हर्ष के युग में शिक्षा का प्रसार और स्तर काफी विस्तृत और ऊंचा रहा होगा।

हर्ष के युग की शिक्षा-प्रणाली के प्रकार पर भी ह्वेनसांग ने प्रकाश डाला है। चीनी-यात्री के अनुसार बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा 'सिद्धम्-चंग' पुस्तक से प्रारम्भ की जाती थी। यह पुस्तक बच्चों को वर्ण-परिचय कराती थी। इस पुस्तक के प्रारम्भ में 'सिद्धम्' लिखा होता था, जिसका अर्थ था कि पढ़ने वाले को सिद्धी अथवा सफलता मिले। यह भी विचार किया जाता है कि सिद्धम् के साथ 'नमो सर्वज्ञ' (बुद्ध) भी जुड़ा होता था। अतः बौद्ध-धर्मियों की प्रारम्भिक पुस्तकें 'सिद्धम्' कहलाती थीं और ब्राह्मणों की प्रारम्भिक पुस्तकें (प्राइमीयर) सिद्धिरस्तु कहलाती थीं। इत्सिंग के अनुसार ६ वर्ष का होने पर बच्चे को सिद्धम् पुस्तक प्रारम्भ करायी जाती थी और उसके अध्ययन में ६ महीने लगते थे।[२८]

सिद्धम् के बाद भारतीय बच्चों को पंच-विद्या के शास्त्रों से विज्ञ कराया जाता था। ये पाँच विद्याएँ ये थीं—(१) व्याकरण या शब्द विद्या (बौद्ध-व्याकरण को शब्द-विद्या कहते थे) (२) शिल्पस्थान-विद्या (शिल्प और अन्यान्य प्रकार की कलाएँ व उद्योग-धन्धे) (३) चिकित्सा-विद्या (आयुर्वेद शास्त्र), (४) हेतुविद्या (तर्क अथवा न्याय-शास्त्र), (५) आध्यात्म-विद्या (बौद्ध-दर्शन-शास्त्र जिसमें संभवतया 'त्रिपिटक' भी शामिल थे)। प्रत्येक बौद्ध-धर्म के आचार्य अथवा पंडित को इन पांचों विद्याओं में निपुण होना आवश्यक था।[२९]

ब्राम्हणों के सम्बन्ध में ह्वेनसांग लिखता है कि वे चार वेदों का

---

come on them and their ill-repute is spread abroad". (Watters, pp. 160-161).

२८—Ibid, pp. 154-155 and ff.

२९—Ibid.

अध्ययन-अध्यापन किया करते थे। वेदों के पढ़ानेवाले आचार्य को सम्पूर्ण-वेदों के ज्ञान में पारंगत होना आवश्यक था। ब्राम्हण आचार्यों की प्रशंसा में ह्वेनसांग लिखता है कि वे विद्यार्थियों को विद्या की ओर प्रवृत्त करते हैं और उन्हें उन्नति की ओर बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। वे आलसी को जाग्रत करते और मन्द-बुद्धिवाले को कुशाग्र बना देते हैं। वे बड़े परिश्रम और धीरज से काम लेते हैं और जब तक विद्यार्थी पूर्णता नहीं प्राप्त कर लेते तब तक पढ़ाते ही जाते हैं। तीस वर्ष का होने पर विद्यार्थी की शिक्षा समाप्त हो जाती है और वे अपने कार्यों में लग जाते हैं। विद्यार्थी अपने आचार्यों के बहुत कृतज्ञ होते हैं और जीवन में प्रवेश करने पर उनका पहला काम अपने गुरुओं को गुरु-दक्षिणा देकर आभार प्रकट करना होता है।[३०] ह्वेनसांग ने कुछ ऐसे पंडितों व आचार्यों का भी उल्लेख किया है जो संसार के कोलाहल से दूर एकान्त में तापस का जीवन बिताया करते थे। सांसारिक सुख-लाभ तथा मान-अपमान का उन्हें विचार नहीं रहता था, और उनकी ख्याति लोक-व्यापी होती थी। राजा लोग उनकी प्रतिष्ठा करते थे, और उन्हें दरबार में बुलाने की धृष्टता न करते थे।[३१]

३०—Ibid, pp. 159-160.

३१—Ibid, pp. 160-161.—"There are men who, far seen in antique lore and fond of the refineme-nts of learning, 'are content in seclusion', leading lives of continence. These come and go (lit. sink and float) outside of the world, and promenade through life away from human affairs. Though they are not moved by honour or reproach, their fame is far spread. The rulers treating them with

वाण से भी मालूम होता है कि ब्राम्हण पंडित अथवा आचार्य अपने घरों पर विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। वाण ने स्वयं अपने गुरु के घर में चौदह वर्ष की आयु तक वेदों का अध्ययन किया था।[३२] संभवतया ब्राम्हणों को दान में दिये जानेवाले गाँव (अग्रहार) भी शिक्षा के केन्द्र थे। इन ग्रामों में शायद गुरुकुल अथवा शिक्षा-संस्थाएँ बनी होती थीं जिनमें विद्यार्थी गृहस्थ में प्रवेश करने से पूर्व विद्याध्ययन किया करते थे। ह्वेनसांग के अनुसार वाराणसी (बनारस) शिक्षा का प्रमुख

---

ceremony and respect cannot make them come to court".

इस तरह के महान् आचार्यों और तपस्वियों के लिये भारत हमेशा से प्रसिद्ध रहा है। चौथी शताब्दी ई० पू० में सिकन्दर और उसके साथी यूनानियों को भी इन आचार्यों का वृत्तान्त मालूम था। ढूँढ़ने पर आज भी संसार के आँखों की ओट में रहनेवाले महान् आचार्य और तपस्वी भारत में मिल सकते हैं। वर्त्तमान युग में श्री अरविन्दो ऐसे ही तपस्वी थे। हर्ष के समय में एकान्त में ध्यान और मनन करनेवाले महान् तपस्वियों और ऋषियों की परम्परा में हमें हर्षचरित और लाइफ से कुछ नाम प्राप्त होते हैं। हर्षचरित के विंध्यअटवी में रहनेवाले दिवाकरमित्र और लाइफ में उल्लेखित पंजाब के वनों में रहनेवाला वेदज्ञ और शास्त्रज्ञ एक ब्राह्मण तपस्वी, और महान् पण्डित व ज्ञानी क्षत्रिय जयसेन, जिसने मगध के राजा पूर्णवर्मा और उसके बाद हर्ष शीलादित्य द्वारा अर्पित अनेक नगरों का राजस्व उपहार में लेना स्वीकार नहीं किया था, सांसारिक माया-मोह, लाभ-अलाभ और मान-अपमान से ऊपर रहनेवाले आचार्य और तपस्वी थे (Life, Beal, p. 74 and pp. 153-154)।

३२—हर्षवर्धन, गौरीशंकर चटर्जी, पृष्ठ २२६, नोट १.

केन्द्र था, जहाँ के लोग विद्याध्ययन में बहुत अनुराग रखते थे।[33]

हर्ष के युग में शिक्षा के मुख्य केन्द्र बौद्ध मठ व विहार थे। ह्वेन-सांग ने अनेक ऐसे विहारों का उल्लेख किया है जहाँ पर बौद्ध-धर्म और दर्शन की उच्च-शिक्षा दी जाती थी। उसने स्वयं कई एक मठों अथवा विहारों में ठहर कर सुप्रसिद्ध आचार्यों से शिक्षा ग्रहण की थी। कश्मीर की राजधानी में जयेन्द्र-विहार के वृद्ध आचार्य से ह्वेनसांग ने कोकशास्त्र, न्याय-शास्त्र और हेतु विद्या-शास्त्र का अध्ययन किया था। ह्वेनसांग कश्मीर में अनेक बौद्ध-पंडितों से मिला था, जो अपने-अपने विषयों में पारंगत थे। उसने लिखा है कि कश्मीर बहुत प्राचीन-काल से विद्या का प्रमुख केन्द्र था।[34] पंजाब और जालंधर के बिहारों में भी ह्वेनसांग ने अनेक शास्त्रों (सूत्रों, पंचस्कन्ध शास्त्र, अभिधर्म-शास्त्र, अभिधर्म-प्रकरण-शासन-शास्त्र आदि) का अध्ययन किया था। जालंधर के नगरधन-मठ के आचार्य चन्द्रवर्मा से ह्वेनसांग ने 'त्रिपिटक' का अध्ययन किया था। श्रुघ्न में भी उसने वहाँ के प्रसिद्ध बौद्ध-आचार्य जयगुप्त से 'त्रिपिटक' आदि का अध्ययन किया था। मतिपुर के एक बौद्ध-मठ के वृद्ध आचार्य मित्रसेन से भी ह्वेनसांग ने त्रिपिटक तथा अन्य शास्त्रों का अध्ययन किया था। कन्नौज के भद्र-विहार में ह्वेनसांग ने तीन महीने ठहर कर वहाँ के त्रिपिटकाचार्य वीर्यसेन से विभाषा आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया था।[35]

इसी तरह पूरब में भी ह्वेनसांग ने अनेक प्रसिद्ध मठों के होने का उल्लेख किया है जैसे वैशाली में श्वेतपुर का मठ,[36] गया का

३३—Watters, vol. II, p. 47.

३४—Life, Beal, pp. 69-70.

३५—Ibid, pp. 77-84.

३६—Watters, II, p. 79.

महावोधि[३७] मठ और कर्ण-सुवर्ण का रक्तामृत मठ[३८] आदि। मुंगेर भी शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र था जहाँ पर उसने आचार्य तथागतगुप्त और क्षान्तिसिंह से शास्त्रों का अध्ययन किया था।[३९] अतः उत्तर में कश्मीर से लेकर मध्य-देश और पूरब में बिहार और बंगाल तथा पश्चिम-भारत में वल्लभी और दक्षिण में कांची आदि स्थानों में सर्वत्र ही हर्ष के समय में ऐसे अनेक बौद्ध-मठ व विहार मौजूद थे जहाँ पर जिज्ञासु लोग महान् आचार्यों से शिक्षा-ग्रहण कर ज्ञान-पिपासा शांत किया करते थे।

लेकिन तत्कालीन बौद्ध-मठों और विहारों में नालंदा विहार शिक्षा और विद्या का सबसे बड़ा और प्रमुख केन्द्र था।[४०] लाइफ के अनुसार भारत में संघाराम सैकड़ों की संख्या में थे लेकिन सबसे भव्य और महान् नालंदा का विहार था। ह्वेनसांग के अनुसार आचार्यों और शिक्षार्थी-भिक्षुओं को मिलाकर लगभग १०००० व्यक्ति नालंदा विहार में रहा करते थे। जिज्ञासु भिक्षुओं में वे भी शामिल थे जो सुदूर देशों से अपनी शंकाएँ मिटाने को आया करते थे। आचार्यों की संख्या कुल मिलाकर १५१० थी। प्रमुख आचार्य शीलभद्र थे। विहार के भीतर रोज एक सौ व्याख्यानों के लिये प्रबन्ध किया जाता था, और प्रत्येक विद्यार्थी को, चाहे एक ही मिनट के लिये सही, उनमें अवश्य शामिल होना पड़ता था।

३७—Ibid, p. 136. Life, p. 158—ह्वेनसांग के अनुसार महावोधि संघाराम को लंका के एक राजा ने बनवाया था। क्या इसका बनानेवाला मेघवर्ण था, जिसने चीनी स्त्रोत के अनुसार सम्राट् समुद्रगुप्त से बोधगया में एक बौद्धविहार बनाने की स्वीकृति चाही थी, जो कि स्वीकार करली गई थी।

३८—Watters, II, pp. 191-192.

३९—Ibid, pp. 179-180.

४०—Life, 110-113 and Watters, II, pp. 164-165.

नालंदा विहार को हर्ष का पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। लाइफ के अनुसार राजा (हर्ष से अभिप्राय है) पंडितों अथवा आचार्यों की प्रतिष्ठा करता था और विहार के भरण-पोषण के लिये उसने एकसौ गाँव की मालगुजारी जागीर में दे रखी थी। इन गाँवों के दो सौ गृहस्थ प्रतिदिन इतना चाँवल और दूध मक्खन विहार को पहुँचाया करते थे कि विहार के भिक्षुओं आदि को अपनी आवश्यकताओं के लिये किसी से कुछ मांगने की जरूरत नहीं रह गयी थी। यहाँ पर जिज्ञासु विद्या और शास्त्रों में पूर्णता लाभ करते थे।

नालंदा विहार में महायान-बौद्ध-धर्म के साथ बौद्ध-धर्म के अन्य अठारह सम्प्रदायों का अध्ययन भी किया जाता था। इनके अलावा ब्राह्मण-धर्म के प्रमुख ग्रन्थ वेदों का भी अध्ययन किया जाता था। अध्ययन के अन्य विषयों में हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्साविद्या, तांत्रिकविद्या और सांख्यदर्शन आदि भी शामिल थे।

नालंदा के जिज्ञासु भिक्षु विहार के नियमों का पूर्णरूप से पालन किया करते थे। संयमित और नियमित जीवन में वे भारत भर में आदर्श-स्वरूप माने जाते थे। भिक्षुओं का सारा दिन अध्ययन और तर्क करने में व्यतीत होता था। वे दिन भर इतना व्यस्त रहते थे कि दिन उन्हें पूरा नहीं पड़ता था। सभी भिक्षु एक दूसरे को कर्त्तव्यों के प्रति प्रेरित किया करते थे और बड़े व छोटे सभी पूर्णता लाभ करने में एक दूसरे को सहायता दिया करते थे। लाइफ के अनुसार विहार के आचार्यों का ऐसा प्रभाव था कि उसकी स्थापना के सात सौ वर्षों के भीतर किसी ने भी कभी विहार के नियमों का उलंघन अथवा अतिक्रमण नहीं किया था।*

नालंदा विहार के प्रधान आचार्य शीलभद्र के अलावा ह्वेनसांग ने अन्य प्रसिद्ध आचार्यों के भी कुछ नाम दिये हैं जिनकी ख्याति दूर-दूर

---

*—Life, Beal, pp. 112-113. Records II, p. 165.

तक फैली हुई थी। ह्वेनसांग ने लिखा है कि धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुण-मति, स्थिरमति, जिनमित्र, और जिनचन्द्र आदि नालंदा के आचार्य बहुत ही गुणवान् और विद्वान् पुरुष थे। उन्होंने अनेक सुप्रसिद्ध ग्रन्थों की भी रचना की थी जिनका सर्वत्र प्रचार और विद्वानों में बहुत आदर-मान था।[४१]

नालंदा विहार में प्रवेश पानेवालों के लिये प्रवेश से पूर्व कड़ी परीक्षा देनी पड़ती थी। ह्वेनसांग कहता है कि जो नालंदा विहार में प्रवेश पाना और वहाँ के तर्क व भाषणों में भाग लेना चाहते थे, उनसे प्रवेश द्वार का रक्षक अनेक कठिन प्रश्न पूछता था, जो उत्तर नहीं दे पाते थे, उन्हें भर्ती नहीं किया जाता था, केवल वे ही भर्ती किये जाते थे। जो पुरातन और नवीन दोनों शास्त्रों में विज्ञ होते थे। प्रवेश-द्वार के रक्षक से अभिप्राय विहार के प्रमुख आचार्य से प्रतीत होता है। प्रवेश के लिये आये हुये दस व्यक्तियों में से मुश्किल से दो-तीन ही प्रवेश पा सकते थे। ह्वेनसांग के इस कथन से यह भी प्रकट होता है कि नालंदा विहार ऊँची शिक्षा का केन्द्र था और विशिष्ठ प्रकार के शिक्षार्थी ही उसमें लिए जाते थे। नालंदा का विद्यार्थी अथवा स्नातक होना गौरव की बात समझी

४१—ह्वेनसांग के समय में शीलभद्र नालन्दा विहार का प्रमुख आचार्य था। गुणमति, स्थिरमति और धर्मपाल (अन्त लगभग ६०० ई०) शीलभद्र से पूर्व के आचार्य थे। स्थिरमति की तिथि ई० सन् ४०० के आसपास मानी जाती है और गुणमति उसका समकालीन था। चन्द्रपाल भी ह्वेनसांग से पूर्व के आचार्यों में था। प्रभामित्र, जिनचन्द्र और ज्ञानचन्द्र ह्वेनसांग के समय में ही नालन्दा के आचार्य थे। इन आचार्यों में चन्द्रपाल, ज्ञानचन्द्र और प्रभामित्र के रचे ग्रन्थ बौद्ध-साहित्य में उपलब्ध नहीं होते। (Watters, II, pp. 165-168-169 और Records, II, Beal, p. 171)।

जाती थी और उनका देशभर में मान था।[४२]

नालंदा विहार में बहुत से मठ शामिल थे। ह्वेनसांग के अनुसार नालंदा विहार का पहला मठ बुद्ध के निर्वाण के कुछ समय बाद शकरादित्य नाम के एक राजा ने बनवाया था। उसके बाद उसके बेटे बुद्धगुप्त ने पहले मठ के दक्षिण में दूसरा मठ बनवाया। दूसरे मठ के पूरब में तथागुप्त ने तीसरा मठ बनवाया। दूसरे मठ के उत्तर-पूरब में सम्राट् बालादित्य ने चौथा मठ बनवाया। यह बालादित्य, ह्वेनसांग कहता है कि कुछ समय बाद बौद्ध-धर्म ग्रहण कर स्वयं अपने बनवाये मठ में रहने लगा था। बालादित्य ने नालंदा में बुद्ध का ३०० फीट ऊँचा एक मंदिर भी बनवाया था। चौथे मठ के पश्चिम में बालादित्य के बेटे वज्र ने पाँचवां मठ बनवाया। इस मठ के उत्तर में मध्यभारत के एक राजा ने एक और विशाल मठ बनवाया। इन सब मठों को घेरती हुई ईंटों की एक ऊंची दीवार बनी थी और उसमें भीतर आने-जाने के लिये एक तोरण अथवा फाटक बना हुआ था। नालंदा विहार अपने भव्य-प्रासादों, सुसज्जित मीनारों, और पर्वत समान परी-देश के-से विशाल गुम्बजों की शोभा से जगमगाया करता था।[४३]

४२—Watters II, p. 165 and Records II, pp. 170-171.

४३—Watters II, pp. 164-165 and 170. Life, pp. 111-112—ह्वेनसांग ने शकरादित्य को नालन्दा विहार का संस्थापक कहा है। सामान्यतः शकरादित्य को गुप्त-सम्राट् कुमारगुप्त प्रथम से मिलाया जाता है जिसका राज्यकाल लगभग ४१५ से ४५५ ई० तक माना गया है (Journal of the Bihar-Orissa Research Society, 1928, p. 1 ff, Political History of Ancient India, H. Raychaudhari, 501)। लाइफ के अनुसार नालन्दा की स्थापना ह्वेनसांग

लाइफ के अनुसार श्रीहर्ष शीलादित्य ने भी नालंदा में एक सौ फीट ऊंचा एक विहार बनवाया था जो पीतल की चादर से

के समय से ७०० वर्ष पूर्व हुई थी। इस कथन के अनुसार नालन्दा की स्थापना करनेवाला शकरादित्य ई० पू० पहली शताब्दी में होना चाहिये (Life, Beal, p. 112 and Note 2)।

बुद्धगुप्त को गुप्त-सम्राट् बुद्धगुप्त से मिलाया जाता है जिसका राज्य-काल लगभग ४७७ से ९६ ई० के भीतर माना गया है। कहा जाता है कि वह महेन्द्रादित्य कुमारगुप्त प्रथम (ह्वेनसांग का शकरादित्य) का शायद सबसे कनिष्ठ लड़का था (Political History of Ancient India, p. 501)। ह्वेनसांग का तथागुप्त इसी बुद्धगुप्त का लड़का माना जाता है और बालादित्य को अन्तिम यशस्वी गुप्तसम्राट् भानुगुप्त (अन्तिम ज्ञात तिथि ५१०–११ ई०) से मिलाया गया है, जिसका उत्तराधिकारी और लड़का वज्र था। महान् गुप्तों के वंश में वज्र अन्तिम सम्राट् हुआ, माना जाता है जिसे सम्भवतया मन्दसोर अभिलेख (५३३ई०) के यशोधर्मन ने हराकर मार डाला था (Ibid, pp. 503-505)।

नालन्दा बिहार पर श्री पानिकर की सम्मति—"Though Nalanda was a Buddhist institution, the teaching there was not carried on in a sectarian spirit.... All the different sects of Buddhism were represented and even Brahminical studies were not neglected. There can be no doubt that Nalanda was one of the greatest educational institutions that ever existed. In the seventh century it was unique in the world as being the only international educational centre. The enthusiasm of the

मंडित था।[४४]

ह्वेनसांग ने नालंदा विहार का जो वर्णन दिया है उससे प्रकट है कि यह विहार अत्यंत प्राचीन था और सातवीं शताब्दी में वह एशिया का एकमात्र प्रमुख विश्वविद्यालय का स्थान ग्रहण कर गया था, जिसमें भारत के सभी भागों के अलावा बाहरी देशों चीन और मंगोलिया आदि से भी विद्यार्थी व जिज्ञासु हजारों मील चलकर प्रवेश पाने के लिये पहुँच करते थे। इस विश्वविद्यालय को हर्ष का भी पूरा संरक्षण और प्रश्रय प्राप्त था जिस कारण उसे (नालंदा विहार) अपने उच्चादर्शों और उद्देशों को कार्यान्वित करने में कोई कठिनायी न थी। दुर्भाग्य से हूणों और प्रमुखतः १३वीं शताब्दी में तुर्कों ने विद्या और ज्ञान के इस महान् अधिष्ठान को भ्रष्ट ही नहीं नष्ट भी कर दिया।

---

chinese scholar for his Alma Mater may have been coloured but the conscientious and upright monk and the careful and painstaking student whose whole life was one long record of perseverance in the cause of learning is certainly not the one to give anything but a strictly honest description of what he saw". (Shri Harsha, pp. 49-50).

श्री मुकर्जी की सम्मति—Harsha, p. 132—"....Nalanda stood for the ideal of freedom in learning, and welcomed knowledge from all quarters, from all sects and creeds. It was a genuine University in the universal range of its studies and not a mere sectarian, denominational school".

४४—Life, pp. 158-159.

अध्याय ५

हर्ष का धर्म-पराक्रम

हर्ष के पूर्वज शिव और सूर्य के भक्त अथवा उपासक थे। हर्षचरित के अनुसार पुष्यभूति-वंश का संस्थापक पुष्यभूति शिव के अनन्य-भक्त व उपासक थे।[1] हर्ष के मधुबन और बांसखेड़ा अभिलेखों तथा सोनपत मुहर[2] के अनुसार हर्ष के परदादा राज्यवर्धन, दादा आदित्यवर्धन और पिता प्रभाकरवर्धन 'परमादित्य-भक्त' अथवा सूर्य देवता के उपासक थे। हर्षचरित में भी प्रभाकरवर्धन को सूर्य का परमभक्त और उपासक बतलाया गया है, जो प्रतिदिन प्रातः पूर्व की ओर अभिमुख होकर लाल कमलों के स्तवक से सूर्यनारायण की अभ्यर्थना किया करता था।[3] सोन-पत-मुहर में राज्यवर्धन द्वितीय को भी 'परमादित्यभक्त' कहा गया है, लेकिन मधुबन और बांसखेड़ा के अभिलेखों में उसे 'परमसौगत' अर्थात् बुद्ध का भक्त व उपासक बतलाया गया है, जिससे प्रकट है कि हर्ष का भाई राज्यवर्धन भी पहले अपने पूर्वजों की भाँति ही आदित्यभक्त था, किन्तु बाद में बौद्ध हो गया था।

हर्ष भी, जैसा कि हर्षचरित और उसके अभिलेखों से पता चलता है, अपने पूर्वजों की तरह पहले शिव और सूर्य का उपासक व ब्राह्मणधर्म का अनुयायी रहा, लेकिन बाद में जैसा कि ह्वेनसांग से मालूम होता है वह बौद्ध-धर्म में प्रवृत्त हो गया था। हर्षचरित के

१—Hc. C. T., p. 84.

२—C. I. I., vol. III, p. 232.

३—Hc. C. T., p. 104.

अनुसार शशांक के विरुद्ध अभियान करने से पूर्व हर्ष ने भगवान् 'नीललोहित' की पूजा की थी।[४] हर्ष के सोनपत-मुहर पर 'नन्दि' अंकित है जो कि शिव का वाहन और शैवों का पवित्र लाक्षणिक है।[५] बांस-खेड़ा-लेख (हर्ष संवत् २२–६२८ ई०) और मधुबन-लेख (हर्ष संवत् २५–६३१ ई०) में हर्ष को "परममाहेश्वर" कहा गया है। हर्षचरित में भास्करवर्मन की शिव-भक्ति का हर्ष अनुमोदन करते हैं;[६] और प्रिय-दर्शिका की प्रस्तावना में शिव व नन्दि की अभ्यर्थना की गयी है। अतः प्रकट है कि हर्ष मूलतः ब्राह्मणधर्मी थे, और जीवन के उत्तरार्ध में ही (६३१ ई० के बाद) वे बौद्धधर्म में प्रविष्ठ हुये थे। किन्तु बौद्ध होने पर भी, जैसा कि ह्वेनसांग से मालूम होता है, हर्ष ने शिव और सूर्य की उपासना का परित्याग नहीं किया और बुद्ध के साथ अपने पुराने कुल-देवताओं की भी निरंतर पूजा करते ही रहे।

हर्ष यद्यपि बौद्ध-धर्म में बहुत बाद प्रविष्ठ हुये थे, लेकिन प्रथम अभियान के समय जब शशांक का पीछा करना स्थगित कर वे अपनी बहिन की खोज में विंध्याटवी में घुसे थे तो वहाँ बौद्ध-आचार्य दिवाकर-मित्र से संपर्क होने पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव तभी उनके मन पर छा गया था। अतः उन्होंने उसी समय दिवाकरमित्र से कहा था कि अपनी आकांक्षाओं अथवा उद्देश्यों को पूरा कर लेने पर वह और उसकी बहिन राज्यश्री दोनों साथ ही 'काषाय' धारण करेंगे।[७] बड़े भाई

४—Hc. C. T., p. 197.

५—C. I. I., vol. III, p. 232.

६—Hc. C. T., p. 219.—"....To whom save siva need he (Bhaskaravarman) pay homage? This resolve of his increases my (Harsa's) affection".

७—Hc. C. T., p. 258.

राज्यवर्धन और प्रिय बहिन राज्यश्री का बौद्ध-धर्मी होने से भी हर्ष का मन बुद्ध के प्रति प्रारम्भ से ही आकृष्ट रहा होगा, यह अनुमान किया जा सकता है। राज्यश्री सम्मितीय बौद्ध-सम्प्रदाय को मानने वाली थी। अतः ह्वेनसांग से भेंट होने के पूर्व हर्ष का झुकाव भी इसी सम्प्रदाय के प्रति रहा होगा। किन्तु ६४३ ई० में कोंगोद (गंजाम) के आक्रमण के बाद जब हर्ष प्रथमतः खजुघिर (बंगाल) में ह्वेनसांग से मिला तो उसके प्रभाव में आकर वह (हर्ष) और उसकी बहिन (राज्यश्री) दोनों महायान बौद्ध-धर्म के अनुयायी बन गये। लाइफ के अनुसार ह्वेनसांग ने महायान धर्म पर एक शास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की थी जिसे देखकर और जिसकी व्याख्या ह्वेनसांग के मुंह से सुनकर हर्ष और उसकी बहिन दोनों को अपार हर्ष हुआ, और महायान-धर्म पर उनकी आस्था बहुत बढ़ गयी। हर्ष ने अपने इस नये धर्म का अन्य लोगों में भी प्रचार और प्रसार करने का निश्चय किया और तद्नुसार कन्नौज में महायान धर्म की एक महासभा बुलाने की योजना बना ली गयी। इस योजना की सफलता के लिये शीघ्र ही राज्यभर में यह सूचना भी दौड़ा दी गयी कि सभी धर्म व सम्प्रदाय वाले कन्नौज में एकत्रित हों और ह्वेनसांग द्वारा की गयी धर्म की व्याख्या पर विचार करें। इस तरह योजना तैयार करके हर्ष भी तब ह्वेनसांग और भास्करवर्मन को अपने साथ लेकर खजुघिर (राजमहल) से कन्नौज के लिये रवाना हुआ और ६० दिन की यात्रा के बाद वहाँ पहुँच गया।[८]

हर्ष के निर्देशानुसार आयोजित सभा के लिये कन्नौज में पूरी तैयारियाँ करली गयी थीं। हर्ष के पहुँचने से पूर्व सभा-भवन के पास घास-फूस से छाये दो बड़े-बड़े भवन भी तैयार कर लिये गये थे, जिनमें एक-एक हजार आदमी बैठ सकते थे। सभा-भवन में बुद्ध

८—Life, Beal, pp. 175-176. Records, I, p. 218.

की मूर्ति के लिये एक बहुमूल्य सिंहासन रख दिया गया था।[९] रेकर्ड्स (सि. यू. की) के अनुसार हर्ष के निर्देशानुसार सभा के लिये गंगा नदी के पश्चिम की तरफ एक विशाल संघाराम बनवाया गया था और उसके पूरब में १०० फीट ऊँची एक भव्य मीनार खड़ी की गयी थी जिसके मध्य में हर्ष ने अपने आकार की बुद्ध की एक स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित करवा रखी थी। मीनार के दक्षिण ओर बुद्ध की मूर्ति को स्नान कराने के लिये एक बहुमूल्य वेदी भी बना दी गयी थी।[१०]

बसन्त-ऋतु के दूसरे महीने से (फरवरी-मार्च) हर्ष के कन्नौज पहुँचने पर कन्नौज की धर्म-महासभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। राजधानी में पहुँचने पर हर्ष स्वयं सभा-भवन के निकट पश्चिम तरफ वाले घास-फूस से बने एक अस्थायी-महल में ठहरे। इस महल में हर्ष ने जुलूस के लिये बुद्ध की एक तीन-फीट ऊँची सोने की प्रतिमा बनवा रखी थी। बसंत के द्वितीय-मास के प्रारम्भिक दिन से इक्कीस दिनों तक हर्ष ने श्रमणों और ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोज दिया। अस्थायी-महल से संघाराम तक गाने-बजानेवालों के लिये भी अनेक सुन्दर मंडप-आदि बनवा दिये गये थे।[११]

कन्नौज की सभा में भाग लेने के लिये, हर्ष के निर्देशानुसार देश-भर से अट्ठारह-बीस राज्यों के राजा अपने यहाँ के प्रमुख श्रवणों व ब्राह्मणों आदि सहित वहाँ एकत्र थे। लाइफ के अनुसार महायान और हीनयान सम्प्रदाय के ३,००० विदग्ध आचार्य ३,००० ब्राह्मण और निर्ग्रन्थ, और नालंदा के लगभग १,००० आचार्य अपने शिष्यों और

९—Life, p. 177.
१०—Records, I, p. 218.
११—Life, p. 177, Records, I, p. 218.

अनुचरों समेत सभा में भाग लेने को आये थे।[१२] सभी आमंत्रित व्यक्तियों को घास-फूस के बने भवनों में ठहराया गया था।

कन्नौज की धर्म-सभा का कार्य बुद्ध के शानदार जुलूस के साथ प्रारम्भ हुआ। सम्राट् के अस्थायी-महल से बुद्ध की तीन फीट ऊँची मूर्ति को लाकर एक विशाल सजे धजे हाथी पर बिठाया गया। जुलूस के साथ श्री हर्ष शीलादित्य इंद्र (शक्र) के रूप में हाथ में श्वेत चँवर लिये हाथी के दाईं तरफ से थे और कामरूप के भास्करवर्मन ब्रह्मराज के रूप में बाईं ओर से साथ चल रहे थे। दोनों राजा देवताओं की तरह सिर पर फूल-माला और जवाहरातों की लड़ियों से युक्त प्रभा-मंडल धारण किये हुये थे। उनके साथ बुद्ध की मूर्ति के पीछे दो हाथी और थे जो जवाहरात, मोती और सोने-चाँदी के फूलों से लदे थे। जैसे-जैसे वे आगे कदम रखते थे वे इन फूलों और मोतियों आदि को बिखेरते जाते थे। दोनों के साथ पाँच-पाँच सौ सुसज्जित युद्ध के हाथी भी थे; और बुद्ध के हाथी के आगे और पीछे एक सौ विशाल हाथियों पर गायकवृन्द भी बाजे बजाते और संगीत लहराते हुये चल रहे थे। शीलादित्य के पीछे उनके निर्देशानुसार, ह्वेनसांग और राजा के प्रमुख परिचारकगण विशाल हाथियों पर सवार थे। अन्य राजाओं, प्रमुख मंत्रियों, और विभिन्न देशों के प्रमुख पुरोहितों व पंडितों के लिये ३०० हाथियों का प्रबन्ध था। ये लोग दो कतारों में बँटकर जुलूस के साथ चल रहे थे और आगे बढ़ते हुये बुद्ध की स्तुति गाते जाते थे। जुलूस प्रातःकाल सम्राट् के अस्थायी-महल से प्रारम्भ हुआ था, और जब वह सभा-भवन के बाहरी प्रांगण के द्वार के निकट पहुँचा, तो सब लोग हाथियों पर से उतर गये और बुद्ध की मूर्ति को सभा-भवन में ले गये। मूर्ति को बहुमूल्य सिंहासन पर आसीन किया गया और तब सम्राट् तथा ह्वेनसांग ने बुद्ध को उपहार चढ़ाये। रेकर्ड्स के अनुसार सम्राट् शीलादित्य

१२. Ibid.

मूर्ति को स्वयं कंधे पर रखकर भीतर ले गये थे। इस अवसर पर २० प्रमुख श्रमण और विभिन्न देशों के राजा सम्राट् के पीछे जुलूस बनाकर साथ चले। बुद्ध को सिंहासन पर आसीन करने के बाद सम्राट् ने सैकड़ों-हजारों जवाहरों से जड़ी रेशमी पोशाकें मूर्ति को अर्पित कीं।

इसके बाद हर्ष की आज्ञा से १८ देशों के राजाओं ने मूर्ति के भवन में प्रवेश किया। उनके बाद समस्त देश के चुने एक हजार पंडित अथवा पुरोहितों, ५०० के लगभग ब्राह्मणों और अ-बौद्धों, और विभिन्न राज्यों के २०० प्रमुख मंत्रियों ने भवन में प्रवेश किया। किन्तु जो बौद्ध-धर्म में आस्था नहीं रखते थे और जिन्हें भवन में जाने नहीं दिया जा सकता था, उन्हें सम्राट् के निर्देशानुसार भवन के प्रवेश-द्वार के बाहर बैठने को कहा गया।

सम्राट् हर्ष ने फिर आये हुये व्यक्तियों को भोज दिया। भोज के पश्चात् सम्राट् ने एक सोने की तश्तरी, एक सुवर्ण-प्याला, सात सुवर्ण-कमंडल, एक सुवर्ण-दंड, तीन हजार सुवर्ण के सिक्के और बहु-मूल्य तीन हजार सूती-वस्त्र बुद्ध को उपहार चढ़ाये। ह्वेनसांग और अन्य आचार्य व पुरोहितों ने भी सामर्थ्यानुसार उपहार भेंट किये।

भोज और उपहार के उत्सव के पश्चात् सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सभा के मुखिया और प्रमुख वक्ता के रूप में ह्वेनसांग के लिये सम्राट के निर्देशानुसार एक बहुमूल्य मंच तैयार करा दिया गया था। रेकर्डस के अनुसार इस सभा के वाद-विवाद में विभिन्न विदग्ध पंडितों ने गंभीर विषयों पर पांडित्यपूर्ण तर्क-वितर्क किया। लेकिन प्रमुख वक्ता ह्वेनसांग थे, जिन्होंने महायान धर्म के सिद्धांतों की व्याख्या करके उसकी महानता पर प्रकाश डाला। इसके बाद ह्वेनसांग ने नालंदा के एक श्रमण द्वारा सबको यह सूचित किया कि जो चाहे वह महायान-धर्म के विषय पर उससे तर्क-वितर्क कर सकता है। यह सूचना एक तख्ती पर लिखवाकर सभा-भवन के बाहर भी टंगवा दी गयी, जिसमें ह्वेनसांग

ने यह भी लिखवा दिया था कि "यदि कोई उसके तर्क के विरुद्ध किसी तरह की असत्यता प्रमाणित कर सकेगा या उसे विवाद में उलझा सकेगा तो वह विरोधी (विजेता) के अनुरोध पर अपना सिर तक कटवा देगा।" ह्वेनसांग के इस दावे के विरुद्ध किसी को भी एक शब्द कहने का साहस न हुआ और संध्या होने पर सम्राट् के निर्देशानुसार सभा-विसर्जित करदी गयी।

सभा समाप्त होने पर सम्राट् हर्ष शाहीशान के साथ आराम करने के लिये अपने अस्थायी-महल को चले गये। अन्य राजागण, कुमार-राजा और ह्वेनसांग भी अपने-अपने शिविरों को वापस हो गये।

दूसरे दिन सुबह फिर पहले के अनुसार ही धूमधाम के साथ बुद्ध की मूर्ति का जुलूस निकाला गया। पाँच दिन सभा होने के बाद हीनयान सम्प्रदायवालों को जब यह प्रतीत हुआ कि ह्वेनसांग ने उनके मत का खंडन कर दिया है तो रोष में भरकर वे उसकी हत्या करने का षड्यंत्र रचने लगे। यह बात जब हर्ष को विदित हुई तो उसने एक घोषणा-पत्र प्रेषित किया जिसमें कहा गया था कि 'सत्य को ढँकनेवाली भूलों को दबाने का कार्य हमेशा से होता आया है। जो लोग असत्यवादी हैं, वे सत्य को छिपाकर लोगों को धोखा देते हैं। संसार में यदि विशिष्ट प्रकार के ऋषि न हों तो उनकी असत्यता का पता कैसे चले? चीन के धर्माचार्य जिनका आध्यात्मिक-ज्ञान विशाल है, जिनकी प्रवचन शक्ति गुरु-गंभीर, है, लोगों को सही बातें बतलाने (भूल सुधारने) और महान् धर्म के सत्य-रूप का दर्शन कराने व मूर्खों तथा राह-भूलों का उद्धार करने यहाँ आये हुये हैं। किन्तु वंचना और असत्य का अनुगमन करने वाले, बजाय झूठ का परित्याग और प्रायश्चित करने के, उस (ह्वेनसांग) के विरुद्ध घातक षड्यंत्र रचने का विचार कर रहे हैं। उनकी इस कुइच्छा से हर एक व्यक्ति में अवश्य ही रोष पैदा होना चाहिये। अतः यदि कोई धर्माचार्य को क्षति पहुँचायेगा या छुयेगा, तो उसका तत्काल सिर उड़ा

दिया जायगा। साथ ही जो कोई उनके विरुद्ध कुछ बोलेगा उसकी जीभ काट ली जायगी। किन्तु वे सब जो उसके उपदेशों से लाभान्वित होना चाहते हैं, उन्हें मुझमें विश्वास रखकर, इस घोषणापत्र से भय खाने की आवश्यकता नहीं है।' इस घोषणा के परिणामस्वरूप असत्यवादियों (हीनयान-पंथ वालों से अभिप्राय है) का दल खिसक कर गायब हो गया, जिस कारण सभा होते अट्ठारह दिन बीत गये लेकिन किसी ने वाद-विवाद में भाग नहीं लिया।[१३]

हर्ष की उक्त घोषणा को कतिपय विद्वानों ने पक्षपातपूर्ण बतलाया है और कहा है कि कन्नौज की सभा में जो वाद-विवाद हुआ वह एकांगीय था, अर्थात् राजा की सुरक्षा में अकेला ह्वेनसांग अपने मतानुसार प्रवचन करता रहा और किसी को उसका विरोध करने की स्वतंत्रता नहीं दी गयी। लाइफ के विवरणानुसार जिस कारण और जिस परिस्थिति में हर्ष ने घोषणा प्रेषित की थी उससे तो यही प्रतीत होता है कि सम्राट् को साम्प्रदायिक उन्मादी व्यक्तियों से ह्वेनसांग का अनहित होने की आशंका थी, जिस कारण सुरक्षा और शांति के निमित्त तथा भारत को एक प्रतिष्ठित विदेशी विद्वान् और धर्माचार्य की हत्या के कलंक से बचाने के हेतु उन्हें उक्त घोषणा-पत्र निकालना पड़ा था। जहाँ तक एकतरफा तर्क अथवा वाद-विवाद का प्रश्न है, वह भी रेकर्डस को देखते हुये संपूर्णरूप में सही नहीं माना जा सकता। रेकर्डस के अनुसार सभा के प्रथम दिन विभिन्न शास्त्रों के पंडितों ने अत्यन्त दुरुह विषयों पर गंभीरता के साथ तर्क-वितर्क किया था।[१४] लाइफ के

१३—Life, pp. 177-180.

१४—"After the feast they assembled the different men of learning, who discussed in elegant language on the most abstruse subjects".—Records, I, p. 219.

अनुसार पाँच दिन सभा होने के बाद ह्वेनसांग द्वारा अपने मत का खंडन किये जाने से हीनयानी रुष्ट हो चले थे।[१५] इस कथन से भी यह लक्षित होता है कि प्रारम्भ से चार-पाँच दिन तक सभा में बौद्ध-धर्म के अन्य-पंथों और विशेषतया हीनयानियों ने अवश्य ही भाग लिया था; लेकिन ह्वेनसांग ने जब अपने प्रगल्भ पांडित्य से उनके सिद्धांतों की असत्यता साबित कर दी तो स्पष्ट है कि सभा में बैठकर तर्क-वितर्क करना उनके लिए स्वतः ही कठिन हो गया होगा। अतः यह कहना कि घोषणा के भय ने ही उन्हें तर्क में भाग नहीं लेने दिया पूर्ण सत्य नहीं हो सकता।

अठारहवें दिन शाम को सभा भंग होने के पूर्व ह्वेनसांग ने पुनः महायान-धर्म की प्रशंसा की और बुद्ध की भक्ति से प्राप्त होनेवाले पुण्य-लाभ पर प्रकाश डाला। उसके प्रवचन से प्रभावित होकर बहुत से हीनयान धर्म के अनुयायी भी महायान-धर्म में चले आये। चीनी आचार्य की इस विजय से हर्ष-शीलादित्य बहुत हर्षित हुये और उन्होंने १०,००० सुवर्ण, और ३०,००० रजत की मुद्रायें तथा १०० बहुमूल्य सूती-वस्त्र ह्वेनसांग को उपहार में प्रदान किये। अठारह राज्यों के राजाओं ने भी बेशकीमती जवाहरात भेंट किये; लेकिन आचार्य ह्वेनसांग ने कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया।

अंत में हर्ष ने भारतीय पद्धति के अनुसार धर्म के विजेता ह्वेनसांग का विशाल हाथी पर नगर में एक शानदार जुलूस निकलवाया और सर्वत्र यह घोषणा की गयी कि चीनी-धर्माचार्य ने सत्धर्म की विजय स्थापित कर

१५—Life, p. 179.—"After five days had passed, the unbelievers of the Little vehicle seeing he had overturned their school, filled with spleen, plotted to take his life".

असत्यपूर्ण विरोधी सिद्धान्तों को खंडित कर दिया है। महायान-धर्म की महासभा ने ह्वेनसांग को महायान-देव की उपाधि से अलंकृत किया और हीनयानियों ने उसे मोक्ष-देव घोषित किया। ह्वेनसांग की इस विजय और पूजा-सम्मान से उसकी सुकीर्ति बाहर के देशों में भी फैल गयी।

१६वें दिन सभा की समाप्ति पर हर्ष ने बुद्ध की सुवर्ण मूर्ति और तमाम वस्त्र और सुवर्ण आदि संघाराम को भेंट किये और पुरोहितों को उनकी देख-रेख रखने की हिदायत दी।[१६]

रेकर्डस के अनुसार सभा की समाप्ति के अंतिम दिन अचानक मीनार और संघाराम के फाटक के ऊपरी मंडप पर सहसा आग लग गयी थी। इस घटना से सम्राट् हर्ष को बहुत आघात पहुँचा और उन्होंने दुःखित होकर बुद्ध के सामने यह स्तुति की कि 'उनके अब तक के पुण्य-इस अग्नि को शांत कर दें, नहीं तो वे प्राण दे देंगे।' इस प्रार्थना के बाद वे तुरन्त फाटक की ओर बढ़े, किन्तु तभी सहसा आश्चर्यजनक ढंग से आग स्वतः ही बुझ चली। इस घटना से सभी उपस्थित राजाओं आदि को बड़ी प्रसन्नता हुई और उनकी सत्धर्म पर श्रद्धा बढ़ गयी। हर्ष तथा अन्य लोग जब इस घटना से दुःखी हो रहे थे, तो रेकर्डस के अनुसार दूसरी तरफ बुद्ध के धर्म के विपक्षी हर्षित होकर एक-दूसरे को बधाई दे रहे थे।

अग्नि-कांड का निरीक्षण करने के लिये हर्ष अन्य राजाओं के साथ आगे बढ़कर मीनार अथवा स्तूप के शिखर पर जा चढ़े। वहाँ से उन्होंने जहाँ आग लगी थी उसका निरीक्षण किया और फिर सीढ़ियों से नीचे उतरने लगे। इसी समय सहसा एक विधर्मी हाथ में चाकू लिये आक्रमण करने को सम्राट् पर झपटा। सम्राट् हर्ष इस आकस्मिक आक्रमण से बचने के लिये पीछे हटकर कुछ सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ गये और फिर झपट

१६—Life, pp. 180-183.

कर उन्होंने स्वयं हत्यारे को धर पकड़ा। सभी उपस्थित राजाओंने सम्राट् से हत्यारे को तुरंत मार डालने का अनुरोध किया, लेकिन उन्होंने ऐसा न करके हत्यारे से प्रश्न किया कि वह किस कारण ऐसा कृत्य करने जा रहा था। इसके उत्तर में हत्यारे ने अपनी मूर्खता की भर्त्सना की और सम्राट् का गुणगान करते हुये यह प्रकट किया कि उसे विधर्मियों ने फुसलाकर हत्या करने को उकसाया था। हत्यारे से जब यह पूछा गया कि विधर्मियों ने उक्त षड्यंत्र को क्यों रचा था, तो उसने उत्तर दिया कि सम्राट् ने श्रमणों के प्रति जो आदर-सम्मान प्रकट किया और मुक्त-हस्त होकर जिस तरह उन्हें दान दिया, तथा बुद्ध की जो सुवर्ण प्रतिमा स्थापित की, उस सबसे विधर्मी रोष से भर गये और उन्हें यह लगा कि उनका कोई आदर-सत्कार नहीं किया गया है; फलतः वे चिढ़ उठे और तब उन्होंने इस दुष्ट-कर्म की योजना बनाकर उसे अपने साधन का हथियार बनाया।

हत्यारे की इस गवाही पर अ-बौद्ध षड्यंत्रकारी ५०० ब्राह्मण पकड़ लिये गये। षड्यंत्र के मुख्य-मुख्य नेताओं को दंड दिया गया और अन्य-अपराधियों को क्षमा कर दिया गया। लगभग ५०० ब्राह्मणों को निर्वासन का दंड मिला और उन्हें साम्राज्य की सीमा से बाहर कर दिया गया। इसके बाद हर्ष अपनी राजधानी को लौट गये।[१७] रेकर्ड्स के इस वृतान्त से लक्षित होता है कि इस समय ब्राह्मणों और बौद्धों में धार्मिक मन-मुटाव और वैमनस्य बहुत बढ़ गया था। अतः ब्राह्मण सम्राट् का बौद्धों के प्रति अनुराग और अपने धर्म के प्रति उदासीन भाव देखकर इतने असंतुष्ट हो चले थे कि उन्होंने सम्राट् की हत्या करने तक का षड्यंत्र रच डाला था जो कि सौभाग्य से सफल नहीं हो सका।

कन्नौज की सभा समाप्त होने पर ह्वेनसांग स्वदेश लौटने की तैयारी करने लगा, किन्तु सम्राट् हर्ष ने उन्हें प्रयाग दान-महोत्सव में सम्मिलित

१७—Records, I, pp. 219-221.

होने का निमंत्रण देकर कुछ समय के लिये और रोक दिया। लाइफ में उल्लेखित हर्ष के स्व-कथनानुसार वह प्रति पाँचवें वर्ष प्रयाग की पुण्य-भूमि गंगा-यमुना के संगम पर धर्म-महोत्सव मनाया करता था, और उस अवसर पर ७५ दिन तक अपने खजाने का समस्त धन और जवाहरात आदि बहुमूल्य वस्तुएँ समस्त देश से आमंत्रित श्रमणों और ब्राह्मणों तथा दीन-अनाथों को दान में दे दिया करता था। दान का यह महोत्सव 'मोक्ष' कहलाता था। कन्नौज की सभा के बाद ६४३ ई० में यह उत्सव छठीं बार किया जा रहा था। अतः यह उत्सव पहली बार ६१२ ई० में हुआ था, जब हर्ष प्रमुखतः शिव और सूर्य का उपासक और ब्राह्मण-धर्मी था। इस वृत तथा रेकर्ड्स के इस कथन से कि शीलादित्य राजा अपने पूर्वजों की तरह संगम के दान-क्षेत्र में सर्वस्व दान में दे दिया करते थे, प्रत्यक्ष है कि प्रयाग का धर्म और दान-महोत्सव मूलतः ब्राह्मण-उत्सव था, बौद्ध-उत्सव नहीं।[१८] इससे यह भी प्रकट हो जाता है कि बौद्ध-धर्म में परिवर्तित होने से पूर्व इस उत्सव में शिव और सूर्य का स्थान ही प्रमुख रहा होगा और दान के प्रमुख पात्र तब ब्राह्मण रहे होंगे। किन्तु बौद्ध होने पर, जब ह्वेनसांग को भी उसमें आमंत्रित किया गया था, यह उत्सव बौद्ध-धर्म प्रधान हो गया था। फलतः इस उत्सव में तब प्रथम स्थान बुद्ध को दिया गया और शिव तथा सूर्य उनके बाद रखे गये। इसी तरह दान-पात्रियों में अब प्रमुख स्थान श्रमणों को दिया गया और ब्राह्मण उनके बाद रखे गये। साथ ही यह उत्सव उस समय के बौद्ध तथा ब्राह्मण-धर्म के प्रकार पर भी प्रकाश डालता है और सिद्ध करता है कि दया-दान और परोपकार का दोनों धर्मों में बहुत महत्व

१८—"....Siladitya-raja, after the example of his ancestors, distributes here in one day the accumulated wealth of five years". (Records, I, p. 233).

था। भारत के राजाओं और देश के धनी-मानी लोगों द्वारा गंगा-यमुना के संगम की भूमि पर प्राचीन काल से ही दान देने की प्रथा चली आती थी, जिस कारण उक्त स्थान 'महादान-भूमि' के नाम से सुप्रख्यात हो गया था। यहाँ के बारे यह प्रसिद्ध था कि जो पुण्य इस भूमि में एक पैसा दान करने से उपलब्ध होता है वह अन्य स्थानों में हजारों रुपया दान करने से भी नहीं होता। इसी कारण यह भूमि पुरातन काल से महिमामय मानी जाती रही है।

सम्राट् हर्ष के पूर्व-निर्देशानुसार प्रयाग में संगम पर बाँस के डंडों से घिरवाकर एक वर्गाकार अहाता तैयार किया गया जो १,००० फीट लंबा और १,००० फीट चौड़ा था। इस हाथे के भीतर घास-फूस के बहुत से भवन तैयार किये गये और उनमें दान के लिये लाया गया संपूर्ण खजाना भर दिया गया। खजाने की वस्तुओं में सोना, चाँदी, बेशकीमती मोती, लाल काँच, इन्द्रनील मोती, महानील मोती आदि शामिल थे। इनके अलावा कुछ लंबे प्रकार के भांडार-गृह भी बनाये गये थे जिनमें रेशमी और सूती वस्त्र तथा सोना-चाँदी के सिक्के आदि भरे थे।

बांस के अहाते के बाहरी तरफ भोजन करने के स्थान बने थे। विभिन्न भांडागारों के सामने एक सौ से भी अधिक लम्बे भवन बने थे जिनमें हजारों व्यक्ति विश्राम पा सकते थे।

महोत्सव की इस तैयारी से कुछ पूर्व ही सम्राट् ने समस्त देश के श्रमणों, ब्राह्मणों, निरग्रन्थों, गरीब, अनाथ और असहाय सभी को दान-उत्सव में शामिल होने के लिये शाही घोषणा द्वारा प्रयाग आने का आमंत्रण दे दिया था। अतः जब सम्राट, ह्वेनसांग और अन्य राजागण प्रयाग पहुँचे तो वहाँ देश भर से लगभग ५००,००० आदमी जमा हो चुके थे।

गंगा के उत्तरी-तट पर सम्राट् शीलादित्य का शिविर स्थापित किया

गया। गंगा-यमुना के संगम के पश्चिम तरफ वल्लभी के राजा ध्रुवभट्ट का शिविर था और यमुना के दक्षिण तरफ कामरूप के राजा कुमार-राज का शिविर स्थापित था। दान के लिये आये हुये व्यक्तियों ने महाराज ध्रुवभट्ट के शिविर के पश्चिम की तरफ की भूमि घेर रखी थी।

दूसरे दिन सुबह सम्राट् शीलादित्य और कुमार-राज अपने सैनिकों व अनुचरों सहित पोतों में बैठकर और ध्रुवभट्ट तथा उसके परिचारकगण हाथियों पर सवार हो जुलूस बनाकर दान-भूमि की ओर अग्रसर हुये। अन्य अट्ठारह देशों के राजा भी योजनानुसार जुलूस के साथ शामिल थे।

उत्सव के पहले दिन दान-भूमि के भीतर बने घास-फूस के एक भवन में बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गयी और महाराज शीलादित्य ने बहुमूल्य जवाहरात भेंट किये। मूर्ति की पूजा के पश्चात् समस्त राजाओं ने बहुमूल्य वस्तुयें, वस्त्र और भोग-सामग्री वितरित कीं और वाद्य के साथ फूल बिखेरे गये। शाम होने पर सब अपने शिविरों को लौट गये।

दूसरे दिन आदित्य-देव (सूर्य) की मूर्ति स्थापित की गयी, और पहले दिन की अपेक्षा आधी वस्तुयें दान में वितरित की गयीं।

तीसरे दिन ईश्वर-देव (महादेव) की मूर्ति स्थापित की गयी और दूसरे दिन की तरह ही दान वितरित किया गया।

चौथे दिन बौद्ध-धर्म-संघ के १०,००० बौद्ध-पंडितों व भिक्षुओं को दान दिया गया। प्रत्येक बौद्ध-पंडित को १०० स्वर्ण मुद्रायें, एक मोती, एक सूती-वस्त्र, विभिन्न प्रकार की पेय और खाद्य-सामग्री, तथा इत्र और फूल प्राप्त हुये। दान-वितरण के पश्चात् सब अपने शिविरों को लौट गये।

इसके बाद लगातार २० दिन तक ब्राह्मणों को दान दिया गया।

फिर १० दिन तक अन्य धर्मावलम्बियों को दान दिया गया।

फिर १० दिन तक दूर-दूर से दान पाने के लिये आये हुये व्यक्तियों को दान दिया गया।

अंत में एक महीने तक दीन-अनाथ और अपाहिजों को दान दिया गया।

इस तरह पाँच वर्ष में जितना धनमाल कोष में एकत्रित हुआ था वह सब सम्राट् हर्ष ने दान में वितरण कर दिया। केवल घोड़े, हाथी और अन्य सैनिक सामानों को छोड़कर सभी-कुछ दान में दे डाला गया। सम्राट् ने बिना हिचके अपने शरीर के वस्त्राभूषण तक दान में वितरित कर दिये।

अंत में अपने पहिनने के लिए सम्राट् ने अपनी बहिन से एक साधारण पुरानी पोशाक भिक्षा में प्राप्त की और तब दशों दिशाओं के बुद्धों की उपासना कर उन्होंने आनन्दविभोर होकर इस प्रकार कहा "इतना धन और कोष एकत्र करके मुझे यह भय लगा रहता था कि वह सुरक्षा के साथ नहीं रखा गया है। किन्तु दान-पुण्य में उसे वितरित कर देने पर, अब मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि उसका समुचित उपयोग कर दिया गया है। मैं शीलादित्य यही चाहता हूँ कि मैं अपने सभी अगले जन्मों में इसी तरह अपने एकत्र धन को मानवमात्र को धर्मभाव से दान करता रहूँ, जिससे मैं अपने में 'बुद्ध का दशबल' प्राप्त कर सकूँ।"

हर्ष के दान वितरण के पश्चात् आमंत्रित राजागण, सम्राट् के अलंकारों और वस्त्राभूषणों को रुपया देकर उन लोगों से खरीद लेते थे जिन्हें वे प्राप्त हुये थे। खरीद के बाद उन वस्तुओं को राजा लोग सम्राट् को भेंट करते थे, और सम्राट् उन्हें फिर दान में दे देता था।

रेकर्डस के अनुसार दान-उत्सव के समाप्त हो जाने पर विभिन्न देशों के राजा सम्राट् हर्ष को अपनी-अपनी तरफ से जवाहरात और वस्त्राभूषण भेंट करते थे, जिससे सम्राट् का कोष पुनः परिपूर्ण हो जाता

था। अतः कोष के खाली हो जाने से राज्य का आर्थिक संतुलन बिगड़ने का यदि कोई भय था, तो उसे आमंत्रित राजागण अपने उपहारों से दूर कर देते थे। इसलिए हर्ष के बाद पुष्यभूति-साम्राज्य के सहसा ढहने का कारण हमें दान से उत्पन्न कोष की हीनता नहीं अनुमानित करनी चाहिये; उसका प्रत्यक्ष कारण तो हर्ष का बिना उत्तराधिकारी छोड़े मरना था। हर्ष के दान का जो रूप हमें लाइफ और रेकर्डस से प्राप्त होता है उसे देखते हुये हम कह सकते हैं कि संसार के इतिहास में दान और दानी का ऐसा महिमापूर्ण दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है।

दान-महोत्सव के समाप्त होने के कुछ ही समय बाद ह्वेनसांग सम्राट् से विदा लेकर अपने देश के लिये रवाना हो गया। विदाई के समय हर्ष और कुमार-राज ने चीनी आचार्य को सुवर्ण के सिक्के आदि बहुमूल्य वस्तुयें भेंट करनी चाहीं लेकिन पहले की तरह ही ह्वेनसांग ने उन्हें लेना स्वीकार नहीं किया। अन्त में ह्वेनसांग को विदा करते समय सम्राट् ने जालंधर के राजा उदित-राज को उसे पहुँचाने और उसके साथ एक सैनिक रक्षक-दल भेजने का निर्देश दिया। ह्वेनसांग के मार्ग-व्यय के लिये सम्राट् ने ३,००० स्वर्ण और १०,००० रजत-मुद्राओं समेत एक हाथी भी उदित-राज के रक्षक-दल के साथ भेजा। कुमार-राज और ध्रुवभट्ट के साथ सम्राट् कुछ मञ्जिलों तक स्वयं भी ह्वेनसांग को पहुँचाने गये और अंतिम विदाई लेते समय उन्होंने अपने सीमान्त के विभिन्न राजाओं को भी इस आशय के पत्र लिखे कि वे चीन के महान् आचार्य का स्वागत् करेंगे और उन्हें मार्ग में कष्ट न होने देंगे। ये पत्र ता-क्वान (महातार नाम के पथ-प्रदर्शन करने वाले अधिकारी) नाम के चार अधिकारियों को सौंपे गये और उन्हें रक्षक-दल के साथ कर दिया गया।

हर्ष के दानोत्सव के विवरण से स्पष्ट है कि यद्यपि बौद्ध होने पर दान में तथा आदर-सम्मान में बौद्धों को प्रथम स्थान दिया गया, लेकिन

उनके बाद ब्राम्हणों और दूसरे सम्प्रदाय वालों को भी दान और सम्मान से पूजित किया गया। इसी तरह यदि पूजा में प्रथम स्थान बुद्ध का रखा गया, लेकिन दूसरे और तीसरे स्थान में सूर्य-देव और ईश्वर-देव की पूजा भी कायम रखी गयी। देश के पर्यटन के समय सम्राट् के अस्थायी-महल में प्रतिदिन यदि बौद्ध पंडितों को एक हजार की संख्या में भोज दिया जाता था, तो उनकी आधी संख्या में ब्राम्हण भी रोज निमंत्रित किये जाते थे। ये सब उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि हर्ष में परंपरागत धार्मिक सहिष्णुता और उदारता विद्यमान थी, और बौद्ध होने पर भी वे अन्य सम्प्रदायों तथा ब्राम्हण-देवताओं का आदर-मान और पूजा किया करते थे।

किन्तु बौद्ध होने के नाते सभी बौद्ध, विद्वान् अथवा मूर्ख हर्ष के आदर के पात्र थे ऐसा नहीं कहा जा सकता। रेकर्डस के अनुसार सम्राट् हर्ष प्रति-वर्ष देश-भर के श्रमणों की सभा बुलाते थे, और स्वयं उनके शास्त्रार्थों और धार्मिक-विवेचनाओं अथवा व्याख्याओं को सुना करते थे। अन्त में जो ज्ञानवान और विमल-चरित्र के प्रमाणित होते उन्हें पुरस्कार दिया जाता था, लेकिन जो अज्ञानी और भ्रष्ट-चरित्र के साबित होते उन्हें दंड दिया जाता था। बौद्ध-पंडितों में जो सब से ज्ञानवान और शुद्ध-चरित्र का होता था उसे सम्राट् स्वयं उच्चासन पर बिठाते और उससे धर्म की शिक्षा-ग्रहण करते थे। जो चरित्र के तो शुद्ध होते लेकिन ज्ञान में विकसित न होते उनका सम्राट् सम्मान करते थे, लेकिन उन्हें विशिष्ठ स्थान नहीं दिया जाता था। किन्तु जो चरित्र के भ्रष्ट होते उन्हें सम्राट् देश से निष्कासित कर देते थे और उन्हें देखना तथा उनकी बातें सुनना भी पसंद नहीं करते थे। इस वृत्त से यह भी अनुमान होता है कि अशोक की तरह हर्ष भी बौद्ध-संघ के नियमन व संचालन में अधिकार रखते थे, और इसलिये संघ के नियमों का अतिक्रमण करने वाले तथा बुद्ध की शिक्षाओं का गलत-सलत अर्थ लगाने वाले भिक्षुओं को

वह संघ से ही नहीं देश से भी निकाल देता था। हर्ष के ये प्रयत्न संघ में पैदा होने वाली बुराइयों को रोकने और संघ का जीवन निर्मल और पांडित्यमय बनाने में बहुत सहायक रहे होंगे, यह निर्विवाद है। उनके ये प्रयत्न इस बात के भी प्रमाण हैं कि सम्राट् बौद्ध-धर्म के निर्मल, कल्याणपूर्ण और ज्ञानमयी धारा को गति और प्रवाह देने के लिए अत्यन्त सचेष्ट और सक्रिय थे।

सम्राट् हर्ष स्वयं भी धर्म के नियमों का पूर्ण रूप से पालन किया करते थे। अपने धर्माचरण द्वारा वे धर्म-प्रचार और अशोक के शब्दों में धर्म-विजय में इतने संलग्न रहते थे कि उन्हें सोने-खाने की भी सुध नहीं रहती थी। अशोक की तरह हर्ष ने भी देश-भर में जीव-हत्या पर प्रतिबन्ध लगाया और जीव-हत्या के अपराधियों के लिये मृत्युदंड की सजा घोषित की थी।

बौद्ध-धर्म के प्रचार और प्रसार के लिये हर्ष ने गंगा नदी के तटों पर १०० फीट ऊँचे हजारों स्तूप बनवाये तथा बुद्ध से संबंधित पवित्र स्थानों में संघाराम स्थापित करवाये। समस्त देश में नगर और गाँवों के मार्गों पर सम्राट् ने पुण्यशालायें अथवा धर्मशालायें स्थापित करवायीं। इन धर्मशालाओं में यात्रियों के लिये खाने-पीने का भी प्रबन्ध रहता था। ये धर्मशालायें 'चिकित्सालयों' का भी काम करती थीं। राज्य की तरफ से धर्मशालाओं में चिकित्सक नियुक्त थे जो यात्रियों और आसपास के निर्धन लोगों की मुफ्त चिकित्सा किया करते थे। इस प्रकार अशोक की भांति हर्ष ने भी बौद्ध-धर्म के 'सर्वकल्याण', 'अक्षति' और 'संयम' के सिद्धांत का पालन करते हुये जीवमात्र की सेवा करने में ही धर्म के स्वरूप को देखा और उसी का अनुशीलन भी किया। सम्राट् के ही शब्दों में 'मन, बचन और कर्म से प्राणिमात्र का कल्याण करना ही हर्ष धर्म-अर्जन अथवा पुण्य-अर्जन करने का सबसे उत्तम उपाय समझता है—'मनसा वाचा कर्त्तव्यं, प्राणिभिर्हितं हर्षणैतत्समाख्यातन्धर्म्मार्ज्जनमनुत्तमम्'—(मधुबन अभिलेख पंक्ति १७; बाँसखेड़ा अभिलेख पंक्ति १४)।

अध्याय ६

धार्मिक-अवस्था

हर्ष के युग में बौद्ध-धर्म और ब्राह्मण-धर्म प्रमुख रूप से प्रचलित थे। ब्राह्मण-धर्म की तरह इस समय बौद्ध-धर्म में भी अनेकों सम्प्रदाय पैदा हो गये थे। ह्वेनसांग ने हीन और महायान सम्प्रदाय के अलावा अन्य १८ बौद्ध-सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। बुद्ध की शिक्षाओं का भिन्न अर्थ और व्याख्या करने से ही विभिन्न सम्प्रदाय उत्पन्न हुये थे, जिससे बौद्ध-संघ की एकता टूट चली थी। बुद्ध की शिक्षाओं का भिन्न अर्थ करने की चेष्टायें तीसरी शताब्दी ई० पू० में ही प्रारम्भ हो चुकी थीं जैसा अशोक के अभिलेखों से स्पष्ट है। इन विभिन्न सम्प्रदायों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा और प्रतिद्वन्दता रहा करती थी और सभी अपने को दूसरे से सच्चा और ज्ञाननिष्ठ समझा करते थे। हीनयान और महायान के सिद्धांतों में भी बहुत भिन्नता थी। हीनयान 'ज्ञानमार्गी' पंथ था और महायान भक्ति-मार्ग का सम्प्रदाय था, जो संभवतया भागवत अथवा वैष्णव-धर्म के प्रभाव से विकसित हुआ था। महायान-धर्म में बुद्ध तथा उनके पूर्व अवतारों-बोधिसत्वों मंजुश्री, अवलोकितेश्वर और वज्रपाणि आदि की पूजा और भक्ति करना मोक्ष-दायक बतलाया गया है। ह्वेनसांग के समय में हीनयान और महायान-सम्प्रदाय ही बौद्धधर्म के मुख्य सम्प्रदाय थे, किन्तु इनमें भी विशेष प्रचार पिछले वाले सम्प्रदाय का ही अधिक था। उत्तरी-भारत में इस सम्प्रदाय के बढ़ाव में ह्वेनसांग का भी बहुत योग माना जायगा। ह्वेनसांग के प्रभाव से ही हर्ष और उसकी बहिन, जो पहले सम्मितीय-सम्प्रदाय के थे, महायान-सम्प्रदाय में प्रविष्ठ हुये थे।

महायान-सम्प्रदाय के प्रचार और प्रसार के हेतु हर्ष ने कन्नौज में धर्म-महासभा की थी, जिसमें ह्वेनसांग ने हीनयानियों और अन्य बौद्ध-सम्प्रदायों को शास्त्रार्थ में गलत सिद्ध किया था। ह्वेनसांग की इस विजय से, संदेह नहीं कि हीनयान आदि बौद्ध-सम्प्रदायों का प्रभाव क्षीण हो चला और महायान-धर्म प्रमुखता प्राप्त कर गया था। हर्ष ने महायान-धर्म को फैलाने और हीनयान-पंथ को दबाने में सक्रियता दिखलायी। लाइफ के अनुसार हर्ष ने उड़ीसा के हीनयान-पंथियों को शास्त्रार्थ में दबाने के लिये नालंदा के आचार्य शीलभद्र को चार प्रमुख आचार्यों को उड़ीसा भेजने के लिये एक पत्र लिखा था।[1] हर्ष के इस प्रश्रय का ही परिणाम था कि कन्नौज में फाह्यान को जहाँ केवल दो बौद्ध-विहार देखने को मिले थे, ह्वेनसांग ने वहाँ के १०० विहारों का उल्लेख किया है जिनमें लगभग १०,००० भिक्षु रहा करते थे।[2]

हर्ष के प्रश्रय और ह्वेनसांग के प्रभाव के बावजूद बौद्ध-धर्म सातवीं शती में अपना प्राबल्य खोता जा रहा था, और ब्राह्मण-धर्म जोर पकड़ चुका था। ह्वेनसांग के समय में जैसा कि उसके विवरण से पता चलता है, बौद्ध-धर्म मध्यदेश में घटती पर था, और उसका विशेष प्रचार मदुरा, पंजाब, कश्मीर और पूर्वीय देशों—बिहार, बंगाल-उड़ीसा और पश्चिम में वल्लभी तक ही सीमित रह गया था। पांचवीं शती में फाह्यान को भारत में यत्र-तत्र बहुत से परिपूर्ण बिहार और मठ देखने को मिले थे, लेकिन ह्वेनसांग ने यहाँ के अनेक स्थानों के बौद्ध-विहारों को उजाड़ अवस्था में पाया था।[3]

१—Life, p. 160.

२—Watters, I, pp. 340 and 342.

३—उदाहरणार्थ फाह्यान के समय श्रावस्ती में ९८ विहार अथवा मठ थे लेकिन ह्वेनसांग को वहाँ केवल एक जेतवन-विहार सुस्थिति में मिला था और शेष नष्टप्राय हो चुके थे। दूसरी तरफ देव-मन्दिरों की

ह्वेनसांग के समय तक सातवीं शती में बौद्ध-धर्म यद्यपि भारत के बाहर अफगानिस्तान, पामीर की घाटी के प्रदेश, बदख्सां, खोतान और पार्थिया, तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान, लंका, बर्मा तथा स्याम आदि प्रदेशों में जड़ें जमा चुका था,[४] लेकिन अपने उद्भव की भूमि (भारत) में उसकी जड़ें हिल गयी थीं। इसका मुख्य कारण

संख्या वहाँ १०० थी और वहाँ के निवासी विशेषतया अ-बौद्ध थे (Watters, I, pp. 377 and 380)। इसी तरह वैशाली में जहाँ पहले सैकड़ों बौद्ध-विहार थे, ह्वेनसांग के समय तीन-चार को छोड़कर शेष विनाश को प्राप्त हो चुके थे। यहाँ पर भिक्षु तथा बौद्धधर्मी लोगों की संख्या बहुत स्वल्प थी (Watters, II, p. 63)।

४ – Harsha, Mukerji, pp. 185-187.

सातवीं शती में बौद्धधर्म के महान् प्रसार पर प्रकाश डालते हुए श्री कारपेंटर कहते हैं—"It had made its way among the multitudinous peoples from the Himalaya to Ceylon, from the mouth of the Ganges to the western Sea. It had been carried into Burma and Siam; it was at home in China and Corea; it was being preached in Japan. Students from Tibet were studying it at Nalanda while yuan Chwang was in residence there, and it had been planted in the highlands of Parthia. The fame of the founder had reached the lands around the Mediterranean, and the name of Buddha was known to men of learning like clement of Alexandaria and the Latin Jerome".

(Theism in Medieval India, Carpenter, p. 109).

हूणों के आक्रमण और शशांक जैसे साम्प्रदायिक उन्मादी राजाओं के प्रहारों के अलावा ब्राह्मण-धर्म और दर्शन का बढ़ता हुआ प्रभाव था। महायान बौद्ध-धर्म भागवत-धर्म के प्रभाव से उत्पन्न हुआ था और परिणामतः बुद्ध का भी अब वही स्वरूप हो गया था जो विष्णु का माना जाता है। ब्राह्मण-धर्म की उदार-वृत्ति ने बुद्ध को विष्णु का ही एक अवतार मानकर उन्हें अपने आराध्य देवों में प्रतिष्ठित कर दिया था। ललितविस्तार में बुद्ध को सर्वशक्तिमान् तथा पुरुषोत्तम कहा गया है और दोनों में 'एक-आत्मभाव' अथवा नारायण ही बुद्ध है बतलाया गया है। इस प्रकार नारायण-कृष्ण की तरह महायानियों के बुद्ध अथवा तथागत भी भूतों (जीवों) के सर्वकल्याण के लिये युग-युग में बारंबार अवतार लिया करते हैं।[५] ब्राह्मण-धर्म, दर्शन और गाथाओं से प्रभावित होकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अनुरूप बुद्ध, अवलोकितेश्वर और तारा

५—"....In the Lalita vistara the Buddha is formally assimilated with Narayana; he is endowed with his might; like him he is invincible; he has the very being of Narayana's himself" (Ibid, p. 46).

Not only at Gaya did he (Buddha) attain supreme enlightenment, he had really reached it many hundred thousand myriads of kotis of ages before. Then in those ages he brought myriads of beings to ripeness...."Repeatedly am I born in the world of the Living".

So Krishna has taught, "Though birthless and unchanging, I come into birth age after age".

(Ibid, p. 81)

अथवा मंजुश्री बोधिसत्वों के रूप में बौद्ध-धर्म में त्रिमूर्ति की भी स्थापना कर ली गयी।[६] इन परिवर्तनों के परिणाम से बुद्ध और विष्णु के बीच का

६—ह्वेनसांग ने नालन्दा से २० मील दूर पश्चिम की ओर एक बौद्ध-विहार का उल्लेख किया है जिसमें तीन मन्दिर थे। बीच के मन्दिर में बुद्ध की ३० फीट ऊँची मूर्ति स्थापित थी। उसके बाईं तरफवाले मन्दिर में तारा बोधिसत्व और दाईं तरफवाले मन्दिर में अवलोकितेश्वर बोधिसत्व की मूर्तियाँ स्थापित थीं। तारा सामान्यतः अवलोकितेश्वर की 'शक्ति' (पत्नी) और जगज्जननी मानी जाती है। सम्भव है चीनी-यात्री ने भूल से तारा को पुरुष-देवता समझा हो या नारी-शक्ति बनने से पूर्व तारा अवलोकितेश्वर की तरह 'बोधिसत्व' के रूप में माना जाता रहा हो? देवी के रूप में तारा की पूजा विशेषतया मंगोलिया और तिब्बत में प्रचलित थी (Watters, II, pp. 105-107)।

बौद्ध-धर्म की 'त्रिमूर्ति' के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालते हुए श्री कारपेन्टर लिखते हैं ''Surrounded by the complex mythology and the different philosophical schools of Hinduism, it was inevitable that Buddhism should be exposed to constant pressure from its relegious environment, and that there should be continuous action and reaction between the various systems of thought and practice. The great sectarian deities, as they are sometimes called, Vishnu and Civa, had long been (in the seventh century) well established, with their consorts, who came to be regarded as embodiment of their Cakti or divine energy. The tendency was not without influence in Buddhism".
(Theism in Medieval India, p. 112).

अंतर मिटता चला गया और भारत की साधारण जनता को विष्णु और बुद्ध में भेद करना कठिन हो गया। इस तरह ब्राह्मण-धर्म बुद्ध को अपने में समेट कर बौद्ध-धर्म को धीरे-धीरे भारत की भूमि से हटाता चला गया।[७] प्रयाग के दान महोत्सव पर सम्राट् हर्ष ने बुद्ध और फिर उनके साथ विष्णु (आदित्य-देव) और शिव (ईश्वर-देव) की मूर्तियाँ भी स्थापित की थीं। इस त्रिमूर्ति के क्रम में स्पष्टतः ब्राह्मण 'त्रिमूर्ति' प्रतिलक्षित होती है, अंतर इतना ही है कि ब्रह्मा की जगह उसमें 'बुद्ध' रखे गये हैं।[८] अतः प्रत्यक्ष है कि सातवीं शती में बुद्ध ब्रह्मा का स्थान ग्रहण कर हिन्दू 'त्रिमूर्ति' के ही अंग बना दिये गये थे; किन्तु ८ वीं ६ वीं शती में कुमारिल और शंकराचार्य आदि ब्राह्मण-दार्शनिकों के प्रभाव से जब बौद्ध-धर्म दब गया और ब्राह्मण-धर्म भारत का प्रधान धर्म हो चला तो बुद्ध विष्णु में ही एक-आत्मभाव अथवा एकाकार हो गये और ब्रह्मा पुनः अपने स्थान पर चले आये।

ब्राह्मण-धर्म और दर्शन के प्रभाव के अतिरिक्त भारत में बौद्ध-धर्म के क्षीण होने का कारण उसकी अपनी आंतरिक कमजोरियाँ भी रही हैं। बौद्ध-धर्म में धर्म के प्रचार के लिये पहिले जो जोश था वह अब शिथिल पड़ गया था। श्री कारपेन्टर के शब्दों में बौद्ध जब अपने विभिन्न मतों की पुष्टि में विहारों की चाहरदिवारी में बैठकर ग्रन्थ लिखने में जुटे थे,

---

७—"With the deification of the Buddha and his admission into the Vishnuite pantheon as an incarnation of Narayan-vishnu, there was little to distinginsh the Buddhist laity from their Brahmanical neighbours". (An Advanced History of India, ed. Majumdar etc, p. 201).

८—Theism in Medeival India, p. 110 and fn 5.

ब्राह्मण राष्ट्रीय-परम्परा पर लोकप्रिय-गाथाओं और महाकाव्यों तथा स्मृतियों को लेकर विष्णु (कृष्ण) और शिव तथा उनसे संबंधित धर्म और दर्शन का जनता में वेग से प्रचार करते जाते थे। ब्राह्मण-धर्म के इस प्रचार के वेग को रोकने में बौद्ध सामर्थ्यहीन साबित हुये और वे राम और कृष्ण से संबंधित महाकाव्यों जैसी कोई रचनाएँ गौतम के प्रचार के लिये उत्पन्न न कर सके और न बुद्ध को राम और कृष्ण की तरह लोकप्रिय बना सके। फलतः ब्राह्मण-धर्म के बढ़ते हुये वेग ने धीरे-धीरे बौद्ध-धर्म को तो उखाड़ फेंका और बुद्ध को विष्णु तथा शिव में समाहित कर अपने आराध्य देवों में मिला दिया।[९] विष्णु, शिव और बुद्ध का एक में मिलना, इस बात का भी प्रमाण है, जैसा कि श्री कारपेन्टर कहते हैं, कि विष्णु और शिव का धर्म कोई बँधा और परिवर्तित न हो सकनेवाला धर्म नहीं था, और इसीलिये उनका धर्म नये दर्शन अथवा नये विचारों को ग्रहण करने तथा अपने प्रतिस्पर्धी का स्वरूप धारण करने में पूरी तरह समर्थ था।[१०]

९— बंगाल में पाल राजाओं के समय में शिव, बुद्धलोकेश्वर के रूप में पूजे जाने लगे और ११वीं शताब्दी में बुद्ध शिव में ही समाहित कर लिये गये (F. K. Sarkar, The folk Elements in Hindu Culture (1917), p. 169. and Theism in Medieval India, p. 118)।

१०—"The relegious forces of Hinduism embodied in the two great deities Vishnu and Civa, associated with the once popular Brahma in a group of the Holy Three, had support af an immense tradition and a powerful priestly caste. Founded upon the ancient hymns, the codes of sacred law, the records of primitive speculation, the cults of

यद्यपि बौद्ध और ब्राह्मण आदि सम्प्रदाय अपने धर्म और दर्शन को आगे बढ़ाने में एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी और प्रतिस्पर्धी थे, लेकिन साथ ही एक दूसरे के भाव विचारों का वे आदर भी करते थे और उनमें पारस्परिक सौहाद्र तथा विचार-सहिष्णुता विद्यमान थी। नालंदा में बौद्ध-धर्म के साथ-साथ ब्राह्मण-धर्म और दर्शन तथा अन्य दर्शनों का भी अध्ययन होता था और कतिपय विहारों में महायान तथा हीनयान दोनों पंथ के भिक्षु सभी हिल-मिलकर साथ रहा करते थे।[११] हर्षचरित में बाण ने विंध्याटवी में बौद्ध-आचार्य दिवाकरमित्र के आश्रम का वर्णन करते हुये कहा है कि वहाँ पर अनेक प्रान्तों से आये हुये बौद्ध निवास करते थे। उन्हीं के साथ जैन और विष्णु (कृष्ण) के उपासक भागवत् भी वहाँ रहा करते थे। उस आश्रम में अनेक धर्मों, पंथों और दर्शनों को माननेवाले भी जैसे कपिल (सांख्य-दर्शन को माननेवाले); कणाद (वैशेषिक-दर्शन को माननेवाले); लोकायतिक (चारवाक को मानने वाले), औपनिषदिक (वेदांत को मानने वाले), न्याय-दर्शन को मानने वाले, तथा स्मृति और पुराणों को मानने वाले तथा विभिन्न दलों से संबंधित साधु लोग भी निवास करते थे। ये लोग अपने विश्वासों पर चलते थे और एक-दूसरे के धर्म और दर्शन आदि विषयों पर परस्पर पूर्ण सौहाद्र के साथ तर्क वितर्क किया करते थे। निःसंदेह दिवाकरमित्र के आश्रम का यह चित्र इस बात को लक्षित करता है कि विंध्याटी का यह आश्रम सातवीं शती में नालंदा की तरह बल्कि उससे भी बढ़कर सभी धर्मों

Vishnu and Civa were no fixed or rigid forms. They could adpet themselves to new modes o thought and take without difficulty the likeness of their rival". (Theism in Medieval India, p. 117).

११—Watters, I, p. 164.

और दर्शनों के अध्ययन का केन्द्र था।[१२] इस आश्रम में विभिन्न धर्म और पंथ के मानने वालों का एक साथ मेल-जोल से रहना और एक दूसरे के साथ तर्क-वितर्क करना विभिन्न धर्मों की पारस्परिक सहिष्णुता, उदारता और सौहाद्रता का भी परिचायक है। भारतीय संस्कृति और ज्ञान के इतिहास में 'आश्रमों' का अत्यंत प्राचीन काल से महत्वपूर्ण स्थान रहा है, और हो सकता है कि सातवीं शती में दिवाकरमित्र के आश्रम की भाँति अन्य अनेकों आश्रम भी तब भारत में विद्यमान रहे होंगे। भारतीय ज्ञान, दर्शन और बौद्धिकता को विकसित करने में तथा विभिन्न धर्मों और दार्शनिक दलों में पारस्परिक मेल-जोल का भाव पैदा करने में भी इन आश्रमों का बहुत योग रहा है।[13] ये आश्रम श्रवण और मनन अथवा अध्ययन के केन्द्र थे। अतः वहाँ पर सभी एक-दूसरे के विचारों को सुनते और उन पर मनन किया करते थे। यह प्रणाली एक-दूसरे को समझने और एक-दूसरे के प्रति सम्मान का भाव पैदा करने में अवश्य ही साधक सिद्ध हुई होगी, क्योंकि 'बहुश्रुत होने से' महान् मौर्य-सम्राट् अशोक ने कहा था कि हम सब धर्मों के सार को समझ सकते हैं और इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि सभी धर्मों में, सभी दर्शनों में अच्छे भाव-विचार हैं, सार-रूप से सभी समान हैं और इसलिये सभी पूज्य तथा आदर के पात्र हैं।

१२—Hc. C. T., p. 233; Theism in Medieval India, pp. 111-112.

१३—These forest instructions were far older than Buddhism itself. By such means was the intellectual life of India continually upheld....Brahmanical orthodoxy contrived to accommodate both atheistic (niricvara) and theistic (secvara) schemes of thought within its cults". (Ibid, p. 112).

बौद्ध-धर्म की तरह ब्राह्मण-धर्म में भी अनेक मत, मार्ग और सम्प्रदाय प्रचलित थे जैसा कि बाण और ह्वेनसांग तथा उसकी 'लाइफ' के विवरणों से पता चलता है। बाण ने जैसा कि ऊपर उल्लेख आ चुका है, भागवत्, पांचरात्रिक (भागवत धर्म का ही एक सम्प्रदाय), शैव, पौराणिक, कापिल, काणाद, और औपनिषदिक-धर्म अथवा मार्गों का उल्लेख किया है। लाइफ में भूतों, कापालिकों और जुटिक अथवा चुंडिक आदि सम्प्रदाय के साधुओं का उल्लेख है। विभिन्न दर्शन के मानने वाले दलों में लाइफ—लोकातियों, सांख्य-दर्शन और वैशेषिक-दर्शन के मानने वालों का उल्लेख करता है।[१४]

लाइफ के अनुसार दुर्गा (शिव की रौद्र शक्ति) के उपासक देवी की संतुष्टि और समृद्धि की प्राप्ति के लिये वर्ष में एक बार नर-बलि दिया करते थे। किन्तु नर-बलि देने वाले ये उपासक डाकू कहे गये हैं जिससे प्रतीत होता है कि दुर्गा की पूजा का यह स्वरूप जनसाधारण से संबंधित न होकर केवल चोर और डाकुओं के हिंसात्मक गिरोहों तक ही सीमित रहा होगा।[१५]

१४—Life, pp. 161-162.

१५—"Now these pirates pay worship to Durga, a spirit of heaven, and every year during the autumn, they look out for a man of good form and comely features, whom they Kill, and offer his flesh and blood in sacrifice to their divinity, to procure good fortune". (Life, p. 86). डा॰ त्रिपाठी इस वृत्त के आधार पर भारत में तब 'नर-बलि' की प्रथा होने का अनुमान करते हैं, वे लिखते हैं—"This (incident) clearly proves that human sacrifice to propitiate the gods or goddesses

ब्राह्मण-धर्म में अनेक सम्प्रदायों के होते हुए भी सातवीं शती में शैव और वैष्णव-सम्प्रदाय दो ही प्रमुख सम्प्रदाय थे और इन दो में भी पहला सम्प्रदाय विशेष रूप से प्रचलित था। बौद्ध-धर्म में प्रविष्ठ होने से पूर्व सम्राट् हर्ष शिव अथवा महेश्वर के ही उपासक थे। कामरूप का राजा भास्करवर्मन और बौद्धों का विरोधी कर्ण-सुवर्ण का राजा शशांक भी शिव के उपासक थे। अतः प्रकट है कि गुप्तों के समय उत्तरी-भारत में विष्णु और भागवत-धर्म को जो प्राधान्य प्राप्त था वह गुप्तों के बाद छठीं और सातवीं शती में शैव-धर्म ने ले लिया था। दक्षिण-भारत में भी शैव-धर्म का प्रचार बढ़ रहा था।[१६] हर्षचरित से मालूम होता है कि आंध्र और द्रविड़ प्रदेश में तांत्रिक शैव-धर्म विशेष रूप से प्रचलित था। बाण ने तांत्रिक उपासकों में द्रविड़ और आँध्र के तांत्रिकाचार्यों का उल्लेख किया है। तांत्रिक उपासक महाकाल (शिव) को परितुष्ट करने के लिये अपने शरीर का माँस तक काट-काटकर होम किया करते थे।[१७]

हर्षचरित्र और हर्ष के प्रियदर्शिका तथा रत्नावली नाटकों में अनेक

---

were then not uuknown". (History of Kanauj, p. 146 fn. 1).

१६—"In the sixth and seventh centuries A. D. saivism seems to have replaced Vaishnavism as the Imperial relegion of Northern India. It counted among its votaries supreme rulers, foreign as well as indigenous, such as Mihirgula, Yasodharman, Sasanka and Harsha". (An Advanced History of India, p. 203).

१७—Hc. C & T., p. 135.

हिन्दू देवी-देवताओं का भी उल्लेख है, जैसे ब्रह्मा, कृष्ण, शिव (महा-काल-हर), इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, और काम (कामदेव) तथा लक्ष्मी (विष्णु की शक्ति), पार्वती (गौरी, उमा, गिरिजा, दुर्गा-शिव की शक्तियाँ), सरस्वती, गंगा, यमुना आदि ।

हर्ष के युग में ब्राह्मण देव-मन्दिरों में पुराण और महाकाव्यों-रामायण और महाभारत की कथाओं का पारायण किया जाता था। यह प्रथा उन दिनों कम्बोडिया के भारतीय उपनिवेश के हिन्दू-मन्दिरों में भी प्रचलित थी।[१८] इस प्रकार हम देखते हैं कि 'धर्म-विजय' का जो महान् प्रयत्न तीसरी शताब्दी ई० पू० में मौर्य-सम्राट् अशोक ने प्रारम्भ किया था और जिसे महान् कनिष्क और यशस्वी गुप्त-सम्राटों ने भी जारी रखा, वह हर्ष के युग में पहुँचकर पूर्णता प्राप्त कर गया था और फलः-स्वरूप भारतीय-संस्कृति बौद्ध और हिन्दू-धर्म के रूप में भारत के अनेक बाहरी पड़ोसी मुल्कों और द्वीपों में प्रतिष्ठित होकर 'बृहत्तर भारत' का निर्माण कर गयी थी।[१९]

१८—"In Harsha Vardhana's reign pious recitations were performed in the temples; and at the same period, a distant Cambojan colony organised similar public readings of the poem which was already preserved in written form". (Theism in Medieval India p. 134—also fn. 4—"Copies of the Mahabharata, the Ramayana, and an unnamed Purana, were presented to the temple of Veal Kantel, and the donour made arrangements to ensure their daily recitation in perpetuity".

१९—"Indeed, the age of Harsha witnessed a considerable development of a Greater India beyo-

बौद्ध और ब्राह्मण-धर्म के अलावा तीसरा प्रमुख सम्प्रदाय जैन-धर्म (निर्ग्रन्थों) का था, यद्यपि उसका प्रचार देश के कुछ भागों में ही सीमित था। लाइफ में भूतों और कापालिकों के साथ निर्ग्रन्थों का भी उल्लेख है।[२०] हर्षचरित में दिवाकरमित्र के आश्रम में विभिन्न सम्प्रदायों के साथ जैनों का भी उल्लेख है और कादम्बरी में क्षपणक अथवा दिगम्बर साधुओं का उल्लेख आया है।[२१] ह्वेनसांग के विवरणानुसार वैशाली; पुण्ड्रवर्धन (रांगपुर-बंगाल); समातट (फरीदपुर-बंगाल); और सुदूर दक्षिण में चोल तथा द्रविड़ (काँची) प्रदेश दिगम्बर निर्ग्रन्थों के मुख्य केन्द्र थे।

---

und the limits of India both towards the Islands of the southern seas and the Eastern countries. Indian culture was spreading in all the neighbouring countries of India". (Harsha, Mukerji, p. 182).

२०—Life, p. 161.

२१—Watters, II, p. 63 and, p. 184. and p. 187, and pp. 224-226. Watters, I, pp. 340-341.

अध्याय ७

सातवीं शताब्दी का भारत

ह्वेनसांग के समय में चीन के लोग भारत को शेन् तु अथवा इन्तु (इन्दु=चन्द्रदेश) के नाम से कहा करते थे। ह्वेनसांग के कथनानुसार भारत 'ब्राह्मण-देश' के नाम से भी प्रसिद्ध था। ब्राह्मणों की शालीनता और प्रतिष्ठा के कारण ही उनके नाम पर भारत 'ब्राहाण-देश' के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त किया था। ह्वेनसांग के अनुसार भारतवर्ष का घेरा ६०, ००० ली से भी अधिक था। और समस्त देश राजनैतिक दृष्टि से ७० राज्यों में विभक्त था।*

ह्वेनसांग के समय में समस्त भारत में अनेक प्रसिद्ध और आबाद नगर वर्तमान थे, जो बौद्ध और ब्राह्मण-धर्म के केन्द्र होने के साथ-साथ व्यापार और समृद्धि के भी प्रमुख केन्द्र थे। आर्यावर्त्त का प्रमुख नगर हर्ष की राजधानी कन्नौज ही था। यह नगर, सुन्दर और भव्य था और उसकी किलेबन्दी बहुत मजबूत थी। उसमें अनेक सुन्दर बगीचे और निर्मल-जल के सरोवर और तालाब बने थे, जो कि उसकी समृद्धि के द्योतक थे। इस समृद्धि का कारणं व्यापार ही था। यहाँ पर जगह-जगह से विपुल मात्रा में व्यापार की बेशकीमती वस्तुएँ एकत्र होती थीं। आर्थिक दृष्टि से लोग खुशहाल थे और उनके निवास-गृह सुन्दर और समृद्धि पूर्ण थे। वहाँ के निवासी जरीदार चमकीले वस्त्र पहिना करते थे और विद्या के बहुत अनुरागी थे।[२१]

---

* Watters, I, pp. 131-140.

२२—Records, I, pp. 206-207.

थानेश्वर के प्रदेश का वर्णन करते हुये ह्वेनसांग लिखता है कि वहाँ के अधिकांश लोग व्यापार किया करते थे। इस व्यापार के परिणाम से थानेश्वर समृद्धि-संपन्न था और वहाँ के धनी लोग रुपया खर्चने में एक-दूसरे से होड़ लगाया करते थे।[२३] थानेश्वर हर्ष की पुरानी राजधानी थी।

मथुरा का प्रदेश जरी (सुवर्ण) और धारीदार सुंदर और महीन सूती कपड़े के व्यवसाय का मुख्य केन्द्र था। मथुरा नगर का घेरा ४ मील (२० ली) था।[२४]

मयूर (हरिद्वार) नगर की आबादी बहुत घनी थी और जवाहिरातों के उद्योग का वह प्रमुख केन्द्र था। प्रयाग की तरह यह भी पुण्यधाम था जहाँ पर जगह-जगह से लोग गंगा में स्नान कर पापों का मज्जन करने आया करते थे। मयूर के प्रदेश में धर्मात्मा राजाओं ने दीन-दुःखियों को भोजन और दवाइयाँ मुफ्त वितरण करने के लिये अनेक पुण्यशालायें बनवा रखी थीं।[२५]

हर्ष के युग के अन्य मुख्य नगर थे--मातिपुर (मंडावर, बिजनौर के निकट[२६]); गोविसान (गोविसान के प्रदेश में वर्तमान काशीपुर, रामपुर और पीलीभीत शामिल थे) नगर का घेरा १४ या १५ ली था और वहाँ के लोग समृद्धिपूर्ण थे।[२७] अहिच्छत्र (अहिच्छत्र के प्रदेश में संभवतया रुहेलखंड का पूर्वी-भाग शामिल था) नगर लगभग १८ ली के घेरे में बसा था।[२८] अयोध्या (अयोध्या का प्रदेश

२३—Watters, I, p. 314.

२४—Ibid, p. 301.

२५—Ibid, p. 328.

२६—Ibid, p. 322.

२७—Ibid, pp. 330-331.

२८—Ibid, p. 331.

समृद्धिशाली था); इस नगर का घेरा २० ली था। इस नगर में १०० बौद्ध-मठ थे और १० देव-मन्दिर। अ-बौद्धों की संख्या यहाँ बहुत न्यून थी।[२९] प्रयाग; इस नगर का घेरा २० ली था। यहाँ पर कुल दो बौद्ध-मठ थे और देव-मन्दिर सैकड़ों की संख्या में थे।[३०] कौसाम्बी, यह नगर ३० ली के घेरे में बसा था। यह प्रदेश समृद्धिशाली था और वहाँ के लोग साहसी, उद्योगी और धार्मिक-वृत्ति के थे। कौसाम्बी नगर में १० बौद्ध विहार थे, लेकिन ये सब विहार नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में थे। देवमन्दिरों की संख्या ५० से भी अधिक थी और अ-बौद्धों की संख्या बहुत अधिक थी।[३१] पि-शो-का या विशोक; यह नगर संभतया बाराबांकी जिले में था। विशोक-प्रदेश धन-धान्यपूर्ण था और लोग सच्चरित्र, सदाचारी और ज्ञान-पिपासु थे। इस प्रदेश की राजधानी (विशोक) का घेरा १६ ली था। यहाँ की अधिकतर आबादी अ-बौद्ध थी। बौद्ध-विहारों की संख्या २० थी, और देव-मन्दिर ५० से भी अधिक थे।[३२] वाराणसी; यह नगर १८ ली लंबा और ६ ली चौड़ा था। नगर की आबादी बहुत घनी थी और निवासी अपार संपत्तिवान थे। नगर-वासियों के घर बेशकीमती वस्तुओं से परिपूर्ण थे। यहाँ के लोग मुख्यतः शिव के उपासक थे और बौद्धों की संख्या बहुत कम थी। बौद्ध-विहार लगभग ३० थे और देव-मन्दिरों की संख्या १०० से भी ऊपर थी।[३३] हर्ष के युग में यद्यपि पाटलिपुत्र का स्थान 'कन्नौज' ने ले लिया था; लेकिन मगध में अब भी अनेक आबाद नगर विद्यमान

२९—Watters, I, p. 355.
३०--Ibid, p. 361.
३१—Ibid, pp. 365-366.
३२--Ibid, pp. 373-376.
३३--Watters, II, p. 47.

थे।[३४] मुँगेर (२० ली घेरा) और चम्पा (४० ली घेरा); विहार के प्रमुख नगर थे। मुंगेर में लगभग १० बौद्ध-विहार थे और देव-मन्दिर २० से अधिक थे। चम्पा के बौद्ध-विहार प्रायः विनष्ट अवस्था में थे।[३५] पुण्ड्रवर्धन (बंगाल के रांगपुर अथवा रंगपुर जिले में); यह नगर ३० ली के घेरे में बसा था। बौद्ध-विहारों की संख्या २० थी और देव-मन्दिर लगभग १०० थे। दिगम्बर निर्ग्रन्थों की संख्या सबसे अधिक थी। पुण्यवर्धन-देश आबाद और समृद्धिपूर्ण था।[३६] समातट (फरीदपुर जिला बंगाल) की राजधानी का घेरा २० ली था। वहाँ के बौद्ध-विहारों की संख्या २० थी और देवमंदिरों की संख्या १०० थी। समातट में सभी धर्मों के लोग रहा करते थे, लेकिन दिगम्बर निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय वालों की संख्या सबसे अधिक थी। [३७] कर्णसुवर्ण-प्रदेश (इसमें उत्तरी बर्दवान, बीरभूम, मुर्शिदाबाद, किशनगढ़ और जेसोर शामिल थे) की राजधानी २४ ली के घेरे में बसी थी। यह प्रदेश पूर्णतया आबाद था और लोग बहुत धनवान् थे। सभी धर्मों के लोग वहाँ बसते थे। बौद्ध-विहार लगभग १० थे और देव-मंदिरों की संख्या ५० थी।[३८] ताम्रलिप्त नगर समुद्र की खाड़ी के निकट था। इसका घेरा १० ली था यहाँ पर स्थल और जल मार्ग आकर मिलते थे। परिणामतः यहाँ अपूर्व बेश-कीमती वस्तुएँ आकर एकत्र होती थीं, जिस कारण यहाँ के निवासी सामान्यतः संपत्तिशाली थे।* उड़ीसा के दक्षिण-पूर्व में समुद्र के किनारे

३४—Ibid, p. 86.

३५—Ibid, pp. 178-181.

३६—Ibid, p. 184.

३७—Ibid, pp. 187-188.

३८—Ibid. pp. 191-192.

* Ibid, p. 190.

चिलितालो (चरित्र ?) नाम का नगर (बंदरगाह) था । इस नगर का घेरा २० ली था । समुद्र से व्यापार करने वाले व्यापारियों का यह केन्द्रस्थल और पड़ाव था । यहाँ पर दूर-दूर के मुल्कों से व्यापारी और लोग आया करते थे । यह नगर बहुत सुदृढ़ था और बेशकीमती वस्तुओं से परिपूर्ण था ।[३९]

धनकटक (बेजवाडा-कृष्णा नदी के दक्षिणी-तट पर) नगर का घेरा ४० ली से ऊपर था, जिसमें लगभग २० बौद्ध-विहार और ५०० से ऊपर देव-मन्दिर थे ।[४०] सुदूर दक्षिण में कांची अथवा कांचीपुर प्रमुख नगर और बंदरगाह था । यहाँ पर १०० बौद्ध-विहार और ८० देवमन्दिर थे, लेकिन दिगम्बर-सम्प्रदायवालों की संख्या सबसे अधिक थी ।[४१]

पश्चिमी-भारत का मुख्य नगर और बन्दरगाह भड़ौच अथवा भारु-कच्छ था । इस नगर का घेरा २० ली से ऊपर था । वहाँ के निवासी समुद्र से अपनी आजीविका चलाते थे ।[४२]

सुराष्ट्र (काठियावाड़) प्रदेश की राजधानी (जुनागढ़ ?) ३० ली के घेरे में बसी थी । यहाँ के लोग धनी और समृद्धिशाली थे । यहाँ लगभग ५० बौद्ध-विहार और १०० से ऊपर देव-मन्दिर थे । समुद्र के निकटवर्ती होने से यहाँ के निवासी समुद्र से लाभ उठाते और ज्यादातर व्यापार से जीविका उपार्जन करते थे ।[४३] उज्जैन नगर का घेरा ३० ली था । यहाँ के निवासी धनी और संपत्तिशाली थे । यहाँ के लोग ज्यादातर अ-बौद्ध थे ।[४४]

३९—Ibid, p. 194.

४०—Ibid, pp. 214-216.

४१—Ibid, p. 226.

४२—Ibid. p. 241.

४३—Ibid, p. 248.

४४—Ibid, p. 250.

ह्वेनसांग के नगरों के विवरण से स्पष्ट है कि भारत तब वैभव और संपत्तिपूर्ण था। इस समृद्धि का मुख्य कारण भारत का आंतरिक तथा वाह्य देशों के साथ का व्यापार था। व्यापार स्थल तथा जल दोनों मार्गों से हुआ करता था। पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों समुद्रों से व्यापार होता था। पश्चिम का मुख्य बन्दरगाह भारुकच्छ था; पूरब में ताम्रलिप्ति और उड़ीसा का चारित्र नगर मुख्य बन्दरगाह थे। इन बन्दरगाहों से यहाँ के व्यापारी बाहरी देशों को माल ले जाया करते थे और विदेशों के व्यापारी यहाँ माल लाया करते थे। सुदूर दक्षिण में काँची प्रमुख बन्दरगाह था। लंका जाने वाले यात्री यहीं से जहाज पर चढ़ते थे। इस यात्रा में तीन दिन लगते थे।[४५] कापिशा में भारत के सभी कोनों से व्यापारिक माल आकर एकत्र होता था। चीन के पूर्वीय-प्रदेशों और उत्तरी-भारत के बीच बहुत पहले से आने-जाने का मार्ग बना हुआ था और कश्मीर से होकर मध्य-एशिया तथा चीन तक भारत का व्यापार हुआ करता था।[४६] व्यापारिक विनिमय में समुद्र से प्राप्त अलभ्य बहुमूल्य वस्तुओं की अदला-बदली से काम लिया जाता था। किन्तु देश के सामान्य व्यापार में सोने-चाँदी के सिक्के और कौड़ियाँ तथा छोटे-मोती लेने-देन के माध्यम थे। खनिज पदार्थों में सोना, चाँदी, सुफेद जस्ता और स्फटिक बहुतायत से उत्पन्न होते थे।[४७] व्यापारियों, शिल्पियों और विभिन्न व्यवसाय वालों के संगठन बने हुये थे जिन्हें श्रेणियाँ कहते थे। पटकार, तैलिक, मृत्तिकार, शिल्पकार तथा वणिक् आदि सभी श्रेणियों में संगठित थे। ये श्रेणियाँ अपने सदस्यों को अपने-अपने व्यवसाय व

४५—Ibid, p. 227.

४६—Records, I, p. 54 and p. 57, fn. 202, and **हर्षवर्द्धन, श्री गौरीशंकर चटर्जी, पृष्ठ ३२४.**

४७—Watters, I, p. 178.

व्यापार की शिक्षा भी दिया करते थे, जिस कारण प्रत्येक व्यवसाय उन्नत स्थिति में था। व्यापारिक श्रेणियाँ व्यापार चलाने के साथ-साथ बैंकों का भी काम करती थीं। ग्राम-पंचायतों की तरह श्रेणियों को अपने संगठन का संचालन करने तथा अपने सदस्यों पर शासन करने का अधिकार प्राप्त था।*

सातवीं शती में यद्यपि व्यापार के फलःस्वरूप बहुत से नगर पनप उठे थे, किन्तु भारत की बहुसंख्यक आबादी गाँवों में ही रहती थी और कृषि से आजीविका पैदा करती थी। ह्वेनसांग ने भारत के विभिन्न प्रदेशों का जो वर्णन दिया है उससे स्पष्ट है कि देश में सर्वत्र ही खेती होती थी और अनेक प्रकार के अनाज व फल-फूल उत्पन्न किये जाते थे। विभिन्न प्रदेशों की विभिन्न प्राकृतिक बनावट और आबहवा आदि के अनुसार जगह-जगह विभिन्न प्रकार की फसलें और फल-फूल पैदा होते थे,[४८] अच्छी फसलें होने का कारण अच्छी जमीन, अच्छी जलवायु और सिंचाई का सुप्रबन्ध होना था।[४९]

ह्वेनसांग के अनुसार नगर और गाँव चौड़ी और ऊँची दिवारों से घिरे होते थे और प्रवेश के लिये फाटक बने रहते थे। बाण की कादम्बरी

---

* Harsha, K. M. Pannikar, p. 60. और हर्षवर्द्धन, चटर्जी, पृष्ठ ३२२.

४८—Ibid, p. 177.

४९—Ibid. श्री पानिकर की सम्मति देखिये—"Agriculture was then, as now, the chief source of India's wealth. India was perhaps the best irrigated country at that time, records showing that even in the time of Mauryas, kings took great pains to have canals dug and dams constructed", (Shri Harsha, p. 59).

के अनुसार प्रमुख नगरों के चारों ओर पानी से भरी खाई भी होती थी जो चूने से पलस्तर की गयी दीवाल से घिरी रहती थी। गलियाँ संकीर्ण होती थीं और रास्ते घुमावदार अथवा टेढ़े-मेढ़े थे। आम मार्ग गंदे थे और मार्गों के दोनों तरफ दूकानें स्थित थीं। कसाई, मछुवाहे, डोम, भंगी और नट आदि लोग नगर के बाहर रहते थे। नगर में प्रवेश करने पर इन लोगों को सड़क की बाईं ओर से चलना पड़ता था।[५०]

मकानों की दीवार और परकोटा बाँस-अथवा लकड़ी के बनते थे। मकानों के कक्ष तथा अट्टालिकाओं पर लकड़ी की चौरस छतों से युक्त कमरे बने होते थे। ये कमरे ईंटों से आच्छादित और चूने से पलस्तर किये होते थे। ये मकान अत्यंत ऊँचे थे और चीनी शैली पर बने होते थे।

साधारण मकान जो घास-फूँस से ढँके होते थे ईंटों और लकड़ी के तख्तों से बनाये जाते थे। इनकी दीवारें चूने से अलंकृत होती थीं। मकानों की फर्श पवित्रता के लिये गाय के गोबर से लीप दी जाती थी और उन पर मौसम के फूल बिखेर दिये जाते थे। साधारण लोगों के मकान बाहर से सामान्य लेकिन भीतर से भव्य और समृद्धिपूर्ण होते थे। मकानों के दरवाजे पूरब की ओर खुलते थे।

घरों में बैठने के लिये साधारण लोगों से लेकर राजा और ऊँचे अधिकारी सभी रस्सी से बुनी बेंच अथवा पर्यंक या पीठिकायें काम में लाते थे। ऊँचे दर्जे और राजकुल के लोगों के पर्यंक अनेक प्रकार के बहुमूल्य पदार्थों जैसे मोती और जरी आदि से सजे-धजे होते थे। राजा के बैठने का सिंहासन भव्य और ऊँचा होता था और बहु-मूल्य जवाहरों से जड़ा और अत्यंत महीन जरी से मढ़ा होता था। सिंहासन के नीचे का पायदान भी जवाहरों से जड़ा होता था।[५१]

50—Records, I, pp. 73-74.

५१—Watters, I, pp. 147-148. Records, I, p. 75.

हर्षकालीन स्थापत्य और चित्रकला आदि के कोई नमूने उपलब्ध नहीं हो सके हैं। ह्वेनसांग से हमें इतना मालूम है कि उस समय के संघाराम और बौद्ध-विहार बड़ी कुशलता और निपुणता से बनाये जाते थे। कड़ियों और छतों की शहतीरें अद्भुत चित्रों से अंकित होती थीं। दरवाजे, खिड़कियाँ और दीवारें विभिन्न रंगों से चित्रित होती थीं। भिक्षुओं की कोठरियाँ बाहर से सादी और भीतर से सज्जित होती थीं। इमारतें कई मंजिल की होती थीं और छज्जे विभिन्न ऊँचाई और प्रकार के बनाये जाते थे। इमारत के मध्य में विस्तृत और ऊँचा भवन अथवा कक्ष बनाया जाता था।[५२] राजमहल का वर्णन करते हुये बाण ने भी लिखा है कि महल की दीवारों पर बालू और चूने का पलस्तर रहता था और कुशल चित्रकारों द्वारा वे विभिन्न रंगों के बने मांगलिक चित्रों से चित्रित रहते थे। महल के कमरों की फर्श लाल जस्ता तथा मणियों अथवा मोतियों से जड़ी होती थीं। राजमहल के खंभों पर भी मणियाँ जड़ी रहती थीं जिनमें अंतःपुर की सुंदरियों के प्रतिबिम्ब झलका करते थे। महल के निकट सुंदर और रमणीय प्रमोदवन भी बने होते थे।[५३] श्री पानिकर का कहना है कि पुलकेसिन द्वितीय जिसके समय में अजन्ता गुफाओं के कुछ सुन्दर भित्ति-चित्र बने और पल्लव नरसिंह जिसने महामल्लपुरम् में अनेक सुन्दर गुफा-मंदिरों का निर्माण कराया हर्ष के समकालीन थे। अतः जब चालुक्य और पल्लव सम्राट् के प्रश्रय में दक्षिणावर्त्त ललितकलाओं के क्षेत्र में अनेक भव्य और सुन्दर कृतियों का निर्माण कर रहा था, तब यह स्वभावतः अनुमान किया जा सकता है कि आर्यावर्त्त भी उस समय कला और विद्या के प्रेमी हर्ष के

५२—Watters, I, p. 147. Records, I, p. 74.

५३—Hc. C. T., p. 124. हर्षवर्द्धन, गौरीशंकर चटर्जी, पृष्ठ ३०२.

नेतृत्व में 'कला-कृतियों' के निर्माण में किसी तरह पीछे न रहा होगा।[५४]

समाज के संगठन पर प्रकाश डालते हुये ह्वेनसांग कहता है कि लोग चार वर्गों अथवा जातियों में विभाजित थे। पहला वर्ग ब्राह्मणों का था। ये विशुद्ध चरित्र के होते थे। इनका जीवन सात्विक और धर्मपूर्ण था।

दूसरा वर्ग क्षत्रियों का था। यह शासक जाति थी। इनका आदर्श दया और धर्म था।

तीसरा वर्ग वैश्यों का था। इनका व्यवसाय व्यापार था।

चौथा वर्ग शूद्रों का था। ये खेतिहर लोग थे। शूद्रों में सबसे नीचा वर्ग चॉडालों, कसाइयों, मछुवाहों, जल्लादों, भंगियों आदि का था जो नगर के बाहर रहते थे।

प्रत्येक जाति के लोग अपनी ही जाति में विवाह करते थे। पिता अथवा माँ के कुल से संबंधित जन परस्पर एक दूसरे से विवाह नहीं कर सकते थे। स्त्रियों का दुबारा विवाह नहीं होता था।

ह्वेनसांग ने 'मिश्रित जातियों' का भी उल्लेख किया है। इन जातियों से उसका अभिप्राय श्रेणियों और निम्नस्तर के शिल्पियों, जुलाहों, चर्मकारों, शिकारियों, मछुवाहों, भिश्तियों और भंगियों के संगठन से है।[५५]

पति के मरने पर स्त्री 'सती' भी हुआ करती थीं। एरण गुप्त-स्तम्भ लेख (५१० ई०) के अनुसार भानुगुप्त के सेनापति गोपराज की युद्ध में मृत्यु होने पर उसकी रूपवती स्नेहमयी पत्नी सती हो गयी थी।[५६] बाण के अनुसार महाराज प्रभाकरवर्धन के मरने पर उनकी महारानी यशोमती सती हुई थीं। हर्षचरित के अनुसार राज्यश्री को बौद्ध-पंडित

५४—Shri Harsha, p. 63.

५५—Watters, I, pp. 168-170. Records, I, p. 82.

५६—C. I. I., vol. III, p. 91.

दिवाकरमित्र और उसके भाई हर्ष ने सती होने से रोका था। किन्तु यह प्रथा उस समय राजपूत युग की तरह आमरूप से प्रचलित नहीं थी।[५७]

लड़के-लड़कियों का विवाह संभवतया छोटी उम्र में ही कर दिया जाता था। राज्यश्री विवाह के समय संभवतया लगभग आठ वर्ष की कन्या थी। राजा और सामन्त आदि कुलीन वर्ग के लोगों में बहु-विवाह की प्रथा थी। पर्दे का रिवाज न था।[५८]

लड़कियों को सुगृहिणी बनाने के लिये उन्हें अनेक तरह की कलाएँ सिखायी जाती थीं। बाण के अनुसार राज्यश्री संगीत और नृत्य आदि कलाओंमें निपुण थी। सामन्तों की रानियाँ भी संगीत और चित्रकला आदि में कुशल होती थीं।[५९] लाइफ के अनुसार राज्यश्री बौद्धधर्म के सम्मतिय सम्प्रदाय की अच्छी ज्ञाता थी। ह्वेनसांग ने जब हर्ष के सामने धर्म पर व्याख्यान दिया था तो सम्राट् की बहिन राज्यश्री भी वहाँ पर मौजूद थी।[६०] यह वृत्त राज्यश्री की बौद्धिक रुचि के साथ पर्दे के रिवाज का न होना भी प्रमाणित करता है।

ह्वेनसांग के अनुसार भारतीय लोग शुभ्र अथवा सुफेद वस्त्र अधिक पसंद करते थे। रंगीन और जरीदार वस्त्र कम पसंद किये जाते थे। वस्त्र काटकर व सिलकर नहीं बनाये जाते थे। किन्तु अजंता के भित्ति-चित्रों में कंचुक अथवा जॉकेटों के जो नमूने मिलते हैं उनसे प्रतीत होता है कि कपड़ों को काटकर सिला भी जाता था। पहिनने के वस्त्र कौशेय (रेशम), क्षौम (सन) और ऊन (भेड़ तथा होला-ली नामक

५७—Hc. C. T., pp. 154-155 and pp. 244-245.

५८—Harsha, Mukerji, p. 63. and Shri Harsha, Panikkar, p. 54.

५९—Hc. C. T., pp. 121 and 124.

६०—Lffe, p. 176.

के जंगली जानवर के बाल से बने वस्त्र) के बने होते थे।[६१]

क्षत्रिय और ब्राह्मणों की पोशाक सुन्दर और रुचिकर होती थी। राजा तथा मंत्रीगण विभिन्न प्रकार की पोशाकें और आभूषण पहिना करते थे। बालों को फूलों से सजाया जाता था और सिर पर मणियों-युक्त मुकुट पहिने जाते थे। आभूषणों का भी लोगों को शौक था। पुरुष भी कड़े और हार, अँगूठियाँ और कुंडल आदि पहना करते थे। बाण ने भी पुरुषों के आभूषण पहिनने का उल्लेख किया है और सिर पर सुफेद फूलों की माला धारण करना राज-चिह्न बतलाया है (परमेश्वर चिह्नभूतां सित-कुसुममुंडमालिकाम्-हर्षचरित पृष्ठ-१७४)। जूते पहिरने का कम रिवाज था और लोग बहुधा नंगे पैर रहते थे।[६२]

चाँवल और गेंहू-जौ आदि की रोटी तथा दूध, मक्खन, दही, मिश्री, चीनी, कड़वा तेल आदि भोज्य पदार्थ थे। मच्छली, बकरे और हिरण का मांस भी खाया जाता था। बैल, गधे, हाथी, घोड़े, सुअर, कुत्ता, बंदर, बाघ आदि जानवरों का मांस वर्जित था। जो इनका मांस खाते थे वे हेय समझे जाते थे और समाज से अलग नगर के बाहर रहते थे। प्याज और लहसुन भी नहीं खाया जाता था और जो इन्हें खाते थे उन्हें भी नगर के बाहर रहना पड़ता था।

क्षत्रिय अंगूर और गन्ने से बनी मदिरा पीते थे। वैश्य तेज शराब पीते थे। श्रमण और ब्राह्मण अंगूर और गन्ने से तैयार किया शर्बत पीते थे। शूद्र लोग कैसी भी शराब पी लेते थे।[६३]

भोजन पर बैठने से पहले लोग हाथ-मुँह धो लेते थे। बचे अथवा उच्छिष्ट भोजन का इस्तेमाल नहीं किया जाता था। भोजन के बर्तन

६१—Records, I, p. 75.

६२—Ibid, p. 76. हर्षवर्द्धन, गौरीशंकर चटर्जी, पृष्ठ २९७-२९८

६३—Records, I, pp. 88-89. Watters, I, p. 178.

PERSONAL COLL

एक दूसरे के द्वारा आगे नहीं बढ़ाये जाते थे। यदि भोजन के लिये काठ या पत्थर का बर्तन इस्तेमाल होता था तो उसे भोजन समाप्त होने पर नष्ट कर दिया जाता था। बाकी सोने, चाँदी, तांबे और लोहे आदि के बर्तन भोजन के बाद मांज कर साफ कर लिये जाते थे। भोजन कर चुकने पर दांतून करके हाथ-मुँह धो लिया जाता था। जबतक वे हाथ-मुँह नहीं धो लेते थे एक-दूसरे को छूते नहीं थे।

शुद्धता के सम्बन्ध में भारतीय बहुत खयाल रखते थे। प्रत्येक समय शौच आदि से निवृत्त होने पर वे स्नान करते और चंदन व केशर आदि से शरीर को सुगंधित करते थे।

राजा के स्नान आदि करने पर नगाड़े बजते और स्तुतियाँ गायी जाती थीं।

धार्मिक कृत्यों के करने से पूर्व परिशुद्धि के लिये स्नान कर लिया जाता था।[६४]

भारत के जनसाधारण के चरित्र पर भी ह्वेनसांग ने प्रकाश डाला है। उसने कहा है कि भारत के जनसाधारण यद्यपि मिजाज के हल्के और जल्दबाज होते हैं, लेकिन उनकी नैतिकता ऊँची है और वे सच्चे व ईमानदार होते हैं। वे गलत तरीके से कोई वस्तु नहीं लेते। रुपये के मामले में वे कोई चाल नहीं चलते, और न्याय करने में विवेक से काम लेते हैं। वे पाप के प्रतिफलों से डरते हैं जो कि उन्हें दूसरे जन्म में भोगने पड़ेंगे। वे इस दुनिया की चीजों में कोई सार नहीं देखते। अपने व्यवहार में वे धोखे या प्रतारणा से काम नहीं लेते और अपने वचनों तथा प्रतिज्ञाओं के पक्के होते हैं। उनके शासन-विधान में अद्भुत सारल्य

६४—Ibid, pp. 88-89, and p. 77. Watters, I, p. 152.

और न्यायप्रियता है और उनके आचरण में बड़ी ही विनम्रता तथा मिठास भरी होती है। ह्वेनसांग का यह कथन सातवीं शती के भारत और भारतियों की उच्च चारित्रिक और नैतिक विशिष्ठता का अपूर्व प्रमाण है।

Indian Institute of Advanced Study
ACC NO. G-4129
DATE 5-12-01
SHIMLA